बी.ए. ज्योतिष

BAJY(N)-350

6th सेमेस्टर

गोल परिभाषा

खण्ड -1

गोल परिचय, परिभाषा एवं विविध क्षेत्र

इकाई - 1 गोल परिचय एवं प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गोल परिचय
1.3.1 गोल प्रयोजन
1.4 वृत्तादि की परिभाषा
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बीएजेवाई (एन)-350 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – गोल परिचय एवं प्रयोजन। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी गणित ज्योतिष से जुड़े 'गोल' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'गोल' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष का ज्ञाता गणितीय विधा में और निपुण हो जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण 'गोल शास्त्र' काल्पनिक है। यह बताना कठिन है कि गोल में कौन कहाँ निश्चित रूप से स्थित है। तथापि गोल ज्ञान आकाशीय खगोलपिण्डों की स्थिति को समझने के लिए परमावश्यक है।

अत:आइए इस इकाई में हम लोग 'गोल' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल के विभिन्न अवयवों को समझा सकेंगे।
- गोल के प्रयोजन को समझ लेंगे।
- गोल के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- गोल का ज्योतिष में योगदान को समझ लेंगे।

1.3 गोल परिचय

सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के द्वारा मानव आदिकाल से ब्रह्माण्ड के विभिन्न रहस्यों के अन्वेषण में प्रयत्नशील है। मानव की जिज्ञासा से भूगोलीय तथा खगोलीय विभिन्न विषयों के बारे में अनेक प्रकार की शंकाओं तथा उलझे हुए प्रश्नों के सही समाधान भी होते हुए आए है। ज्योतिशषास्त्र के अन्तर्गत गोलज्ञान के बिना अन्य ज्ञान सम्भव नहीं है। गोलज्ञान तथा उसकी संरचना आदि सिद्धान्त स्कन्ध का मूल विशय है। इनके ज्ञान के बिना पृथ्वी ग्रह तथा नक्षत्रों के प्रभाव से विष्व मे परिवर्तन की चर्चा करना भी असम्भव है। गोलज्ञान के लिए पाटीगणित, क्षेत्रमिति, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति, गोलीयज्यामिति, गोलीयत्रिकोणमिति,

चलनकलनादि का ज्ञान क्रमिक विकास के अनुसार परम आवश्यक है।

खगोलीयपिण्डों की परस्परदूरी के माप के लिए सूर्यादिग्रहों के उदयास्तकाल, सूर्यादि का ग्रहणकाल, ग्रहस्पष्टीकरण, विभिन्न देशों के अक्षांश, रेखांश आदि के ज्ञान, तथा इसी प्रकार अनेक गोलीयप्रश्नों के समाधान के लिए सर्वप्रथम सुन्दर, सुदृढ़ बाँस या धातु की शलाकाओं से दृष्टान्तगोलानुरूप भूगोल के उपर काल्पनिक खगोल, ग्रहगोल तथा भगोल आदि की रचना की जाती है। दृष्टान्तगोल में ग्रहों के उदयास्तादि ज्ञान के लिए क्षितिज, उन्मण्डलादि वृत्तों की रचना की जाती है। अक्षांशज्ञान के लिए उन्मण्डलक्षितिज, स्वदेशीयक्षितिज तथा याम्योत्तरवृत्त की रचना की जाती है। इनसे ग्रहो की शर, क्रान्ति आदि का ज्ञान किया जाता है।

पृथ्वी के किस स्थान पर दिन और रात्रि पूरे वर्ष पर्यन्त समान होते है? सारे विश्व में दिन-रात की लम्बाई कब-2 बराबर होती है ? उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन कब होता है? राहु और केतु क्या है? अयनांश की प्रवृत्ति कहाँ से होती है? अक्षांश, लम्बांश का ज्ञान कैसे होता है? ग्रहण कब और क्यों होता है? इस प्रकार अनेक प्रष्नों के समाधान के लिए गोलज्ञान अत्यावष्यक है। खगोलीय विभिन्नमान, स्थित्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष सापेक्ष काल्पनिक रेखाओं की रचना की जाती है। ये सभी तथ्य गोल से सम्बद्ध हैं।

खगोलज्ञान एक ऐसा समुद्र है, जिसकी जितनी गहराई मे हम पहुँचते है, वह उतना ही और अधिक गहरा लगता जाता है। गोलज्ञान रूपी महासमुद्र की गहराईयों में जाने के लिए खगोलीयवृत्तों गोलीय परिभाषाओं के साथ-साथ क्षेत्र तथा विभिन्न काल्पनिक रेखाओं से उत्पन्न खगोलीय नियामकों का ज्ञान होना आवष्यक है।

'गुड' शब्द में अच् प्रत्यय से गोलशब्द की उत्पत्ति हुई है। गुढ़ अर्थात् गहन। गहन विषयों की चर्चा जिसमें होती है उसे 'गोलज्ञान' कहते है। इसमें समस्त गोलीय गणितीय विषयों का समावेश है। गोलशब्द गोलाकार घनपिण्ड, भूगोल, दिव्यलोक, आकाशमण्डल आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः गोल, गोलीयपिण्ड तथा विभिन्न गोलीयवृत्तों के नियामकों तथा सम्बन्धों का ज्ञान सुगमता से कराना इस इकाई के अन्तर्गत रखा गया है।

1.3.1 गोल प्रयोजन: -

ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि का यथार्थज्ञान जिस क्षेत्र विशेष से होता है, उसे 'गोल' कहते है। त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिशषास्त्र का मूलप्रयोजन भूत-भविष्य एवं वर्तमान का समस्त शुभाशुभ प्रभाव निरूपण करना है। शुभाशुभ प्रभाव निरूपण लग्नकुण्डली के आधार पर होता है। अर्थात् लग्नकुण्डली में स्थित ग्रहों की स्थापना स्पष्ट ग्रहसाधन से करना होता है। लग्नसाधन स्पष्टग्रह गणित की गणितीय उपपत्ति, खगोलीयविध तथा गोलीय उपपत्ति के बिना असम्भव है। गणितज्ञान के बिना गोलज्ञान सम्भव नहीं है। अतः सर्वप्रथम गणित का ज्ञान होना चाहिए यह भास्कराचार्य जी का भी मत है।

भूगोल, ग्रहगोल तथा खगोल के सम्यक् ज्ञान के लिए सर्वप्रथम गणित का ज्ञान अंकगणित, ज्यामिति, रेखागणित, बीजगणित आदि का ज्ञान अत्यावश्यक है। यह प्रथम द्वार है।

गोलीयप्रभावज्ञान- शुभकाल में प्रारम्भ किये यज्ञकर्म की निर्विघ्न परिसमाप्ति तथा उससे शुभफल प्राप्ति के लिए ज्योतिशषास्त्र की उत्पत्ति हुई। यज्ञकर्म करने के लिए शुभमुहूर्त्तो का निरूपण संहितास्कन्ध के मुहूर्त ज्योतिष के आधार पर दिव्य तथा भौमान्तरिक्ष के प्रभावादि का निरूपण संहिताशास्त्र के आधार पर तथा यज्ञकुण्ड, पूजावेदी आदि का निर्माण रेखागणित के आधार पर किया जाता है। इसलिए ज्योतिशशास्त्र को वेदांगपुरूष का मुख्य अंग नेत्र स्थानीय माना जाता है।

वैदिककाल में यज्ञकुण्ड, पूजावेदी के निर्माण के लिए ऋशिओं ने सूत्रों का प्रणयन किया था। उसे शुल्वसूत्र कहा जाता है। इस का अर्थ है -''नापने की डोर''। अतः इससे ज्ञात होता है की वैदिककाल से ही ज्यामिति, रेखागणित आदि का प्रयोग होता चला आ रहा है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा सभ्यता में गृहमार्ग आदि के निर्माण में ज्यामिति का व्यवहार होता था। मिश्र के पिरामीड़ आदि भी ज्यामिति के विभिन्न नियम तथा पद्धति की सहायता से बनते थे।

'ज्या' शब्द का अर्थ भूमि वा पृथ्वी तथा 'मिति' शब्द का अर्थ माप होता है। अतः ज्यामिति का अर्थ है भूमि की माप। अतः इसे गणितशास्त्र के प्रधान अंग के रूप में माना जाता है। जिसके सम्पूर्ण ज्ञान के लिए बिन्दु, रेखा, सरलरेखा, समतल, वृत्त, गोल आदि का ज्ञान होना जरूरी है। इससे हम गोलज्ञान सम्यक् प्राप्त कर सकते है। मापन तथा गणना, दो क्रियाविशेष इससे प्रत्यक्ष जुड़ा है। बिन्दुओं के योग से रेखा की उत्पत्ति होती है। इसलिए रेखा को बिन्दुमयी कहा जाता है। कुटिलरेखा

से वृत्त की उत्पत्ति और वृत्तों से गोल की उत्पत्ति होती है। अतः इस इकाई मे विभिन्न गोलीयवृत्तों का परिचय प्रदान किया जा रहा है, जिससे पाठक गण गोलतत्व को समझने तथा उसके विभिन्न प्रयोग में समर्थ हो सके।

1.4 वृत्तादि की परिभाषा

1. बिन्दु - बिन्दु नियतस्थान मात्र होता है, जो दैर्घ्य, विस्तार उच्चता तथा आयतन रहित है। जैसे एक वस्तु का निर्माण अणु-परमाणुओं से होता है, उसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र का निर्माण अनेक बिन्दओं के योग से उत्पन्न रेखाओं से होता है, परन्तु दोनों में पार्थैक्य है। अणु आदि का भी माप होता है, परन्तु बिन्दु का कोई माप नहीं होता है। इस की स्थिति के विशय में केवल स्थान नियत होता है। इससे छोटे आकार की कल्पना पार्थिव दृष्टि से असम्भव है। क्षेत्र में बिन्दुओं के मध्य में शून्य स्थान नहीं होता है।

लेखनी के शीर्षभाग को कागज के उपर दबा देने से जो चिह्न बनता है, उसे बिन्दु कहते है। निम्न अंकित चिह्नों को देखिए। उनमें 1 से लेकर 8 तक के चिह्नों को बिन्दु कहा जा सकता है। परन्तु वे सब अनेक बिन्दुओं के समाहार है। केवल 7 नम्बर के चिह्न को बिन्दु कहेगें। अविभाज्य दैघ्र्यविस्ताररहित स्थान बिन्दु कहलाता है। यथा - क्षेत्र -1

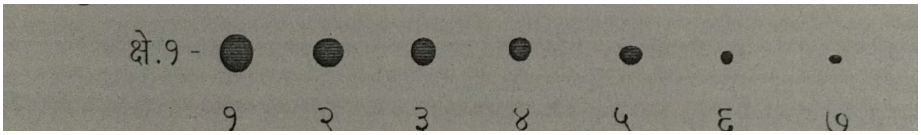

1.रेखा - रेखा बिन्दुओं का समुच्चय होता है। बिन्दु की गतिपथ को रेखा कहते है। रेखा 2 प्रकार की होती है। सरल, वक्र, रेखा। एक बिन्दु को दिग् परिवर्तन न करते हुए आगे बढ़ाया जाए तो वह सरलरेखा बनती है। जो एक दिषा में जाते जाते दूसरी दिषा की ओर मुड़ जाए उसे वक्ररेखा कहते है।

1. _____

क्षेत्र -2 वृत्त वक्र रेखा का उदाहरण है।

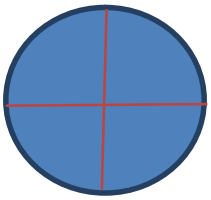

विशेष -

दो बिन्दु के बीच अल्प दूरी तक सरलरेखा होती है। प्रदर्षित चित्र में 'क' तथा ख बिन्दु के मध्य में छोटी रेखा सरलरेखा है। क्योंकि क,ख बिन्दु के मध्य में लघुत्तम रेखा ही दोनों बिन्दु के मध्य की दूरी को दर्षाती है।

क्षेत्र - 4

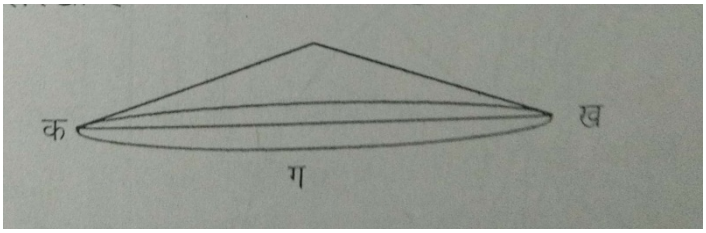

- ❖ दो समतल बिन्दु को लेकर केवल एकमात्र सरलरेखा का अंकन किया जा सकता है।
- ❖ दो सरलरेखा केवल एक ही बिन्दु पर परस्पर छेदित करते है। इससे चारकोण बनते है। यथा क्षेत्र– 5

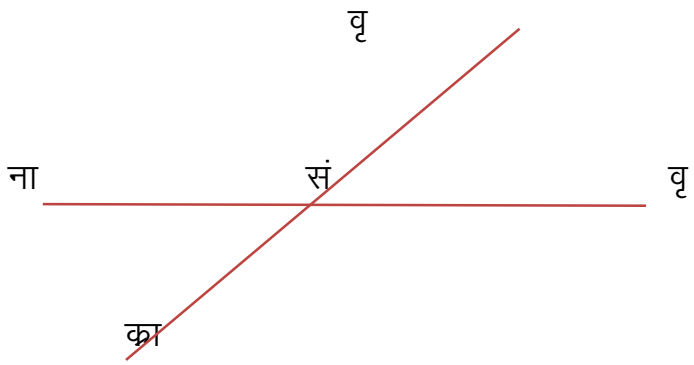

प्रदर्षित चित्र में नावृ और क्रावृ दो सरलरेखा है। दोनों का योग एक मात्र 'सं' बिन्दु में ही हो सकता है।

❖ दो समानान्तर सरलरेखाओं में छेदनबिन्दु नहीं होते है। दो रेखाओं की दूरी सर्वत्र तुल्य होने से समानान्तर कहते हैं।
यथा – क्षेत्र–6 अ _____ वृ

_____

ना वृ

❖ एक ही बिन्दु के मध्य से असंख्य सरलरेखा का अंकन किया जा सकता है। जो प्रदर्षितक्षेत्र में स्पश्ट है। यथा – क्षेत्र. 7 –

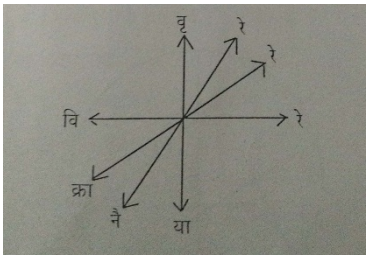

विरे – विषुवत्रेखा
क्रारे – क्रान्तिरेखा
नैरे – कोणरेखा
विरे – विमण्डल रेखा
या वृ – याम्योत्तर रेखा
सरल रेखा को बढ़ाने पर आदि और अन्त नहीं होता है। वे उभय पार्ष्व में सीमाहीन विस्तृत होती है।

3. वृत्त – कुटिलरेखा से आबद्धधरातल को वृत्त कहते है। वृत्त के मध्यबिन्दु को केन्द्र कहते है। अर्थात् जो क्षेत्र अपने ही मध्यस्थबिन्दु से चारों और तुल्य अन्तर में स्थित एक अछिन्न अखण्डित कुटिलरेखा से घीरा हो, उसे वृत्त कहते है। उसका मध्यस्थबिन्दु उस वृत्त का केन्द्र होता है। यथा –

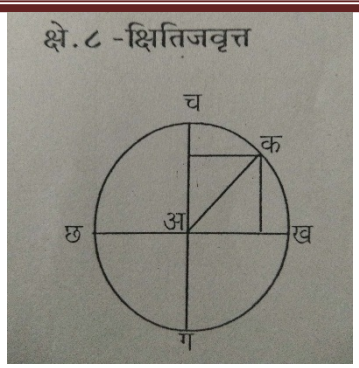

प्रदर्षित क्षेत्र में अ वृत्त का केन्द्रबिन्दुं है। उस मध्यबिन्दु के चारों ओर तुल्य दूरी पर क,ख,ग एवं घ बिन्दु है। इन सभी बिन्दओं के योग से क,ख, चग, गछ, छच कुटिलरेखाओं की उत्पत्ति हुई। क,ख, गछ अ केन्द्रिकवृत्त की परिधि है। अक = अख=अग=त्रिज्या =90 अंष चाप की ज्या त्रिज्या सरलरेखा है, चाप व्रकरेखा है। प्रत्येक वृत्त में 360^0 अंष का होते है। एक वृत्त में समकोण पर $90^0 \times 4 = 360^0$। 1 पद = 1 समकोण = 90^0 ।

विषेश –

1. एक वृत्त का एक मात्र केन्द्रबिन्दु होता है ।
2. एक वृत्त की एक ही परिधि होती है।
3. एक वृत्त में सभी व्यासार्द्ध एक ही माप के होते है।
4. एक वृत्त में असंख्यव्यासार्द्ध होते है।
5. त्रिज्या + त्रिज्या = व्यास = 2 त्रि = व्यास। एक वृत्त में सभी व्यास एक ही माप के होते है।
6. वृत्त की उभय पालि संलग्न केन्द्रगत रेखा व्यासरेखा है।

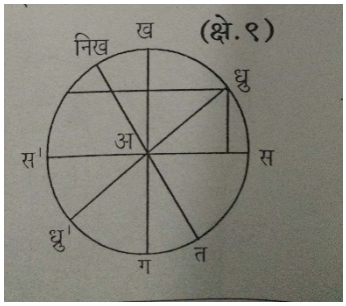

क्षेत्र विवरणः– प्रदर्षित क्षेत्र में अ केन्द्रबिन्दु है तथा ध्रुध्रु, गख, तनिख, कच, आदि वृत्त के व्यास रेखा है। अपने क्षितिजवृत्त में विभिन्नपिण्डगतसूत्र तथा रेखाओं के संयोग से रेखागणितीय प्रकार से विभिन्न गोलीयसमीकरण तथा निश्कर्श सत्यापित होते हैं।

➢ वृत्त के परिमिति दैर्घ्य को परिधि कहते है।

अभ्यास प्रश्न –

1. 'गुड' शब्द में अच् प्रत्यय लगने से कौन सा शब्द बनता है।
   क. वृत्त ख. गोल ग. ज्या घ. खगोल
2. ज्या शब्द का क्या अर्थ है?
   क. पृथ्वी ख. गोल ग. ब्रह्माण्ड घ. ज्यामिति
3. निम्न में नियत स्थान मात्र होता है?
   क. रेखा ख.बिन्दु ग. क्षेत्र घ. गोल
4. बिन्दुओं के समुच्चय को क्या कहते है?
   क. गोल ख. रेखा ग. बिन्दु घ. ज्या
5. वृत्त के मध्य बिन्दु को क्या कहते है?
   क. परिधि ख. व्यास ग. केन्द्र घ. रेखा
6. एक वृत्त में कितने परिधि होती है?
   क. १ ख.२ ग.३ घ.४

4- चाप – वृत्त के परिधिखण्ड को चाप कहते है। प्रदर्षित कखग वृत्त परिधिखण्ड कख, खग, अथवा गक वृत्त खण्ड रूप चाप है– क्षेत्र 10

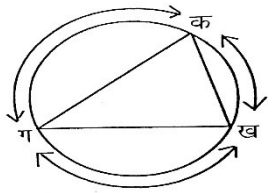

5. पूर्णज्या तथा ज्या – परिधिस्थ किसी भी दो बिन्दु के योगरूप सरलरेखा को पूर्णज्या कहते हैं। वा चाप के दोनों प्रान्त को मिलाने वाली योगरेखा को प्राचीनतम में ज्या कहते हैं। उसके आधे को ज्यार्ध कहते है।

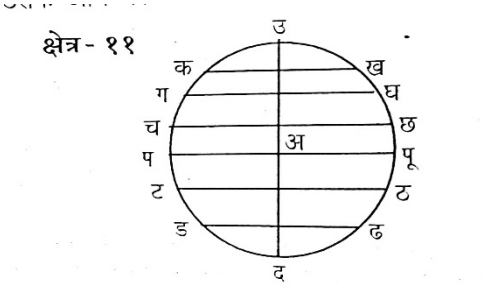

विषेश –

1. एक वृत्त में असंख्य ज्या होती हैं।
2. वृत्त का केन्द्रबिन्दु जिस पूर्णज्या के उपर अवस्थित हो उसे वृत्त की व्यासरेखा कहते हैं।
3. व्यासरेखा वृत्त की सबसे बड़ी पूर्णज्या हैं।
4. प्रदर्षित क्षेत्र में कख, गघ, चछ, पपू, टठ, डढ रेखाएँ सब वृत्त की पूर्णज्यायें हैं। पपू, ज्या वृत्तकेन्द्रबिन्दु अ होकर गयी है। अतः पअपू तथा उअद वृत्त की व्यास रेखायें है।

6. अर्धवृत्त – जिस चाप की ज्या व्यास होती है, उसे अर्धवृत्त कहते हैं। व्यासरेखा से वृत्त दो अर्धवृत्त में विभाजित होता है। यथा क्षितिजवृत्त को दक्षिण उत्तर, पूर्वपष्चिमादि क्रम से बांटने पर निम्नांकित क्षेत्र में कगख वृत्तचाप की पूर्णज्या वृत्त व्यासरेखा कख तथा गघ है। दो अर्धवृत्त इससे बनता है। खघक = 180^0 = खगक।

- १२

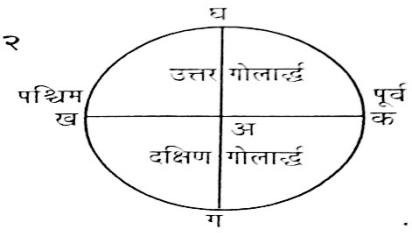

एवं घकग = घखग।

कगख तथा कघख अर्धवृत्त दोनों एक ही वृत्त के कख व्यासरेखा से उत्पन्न है। इसे क्षितिजवृत्त मानने पर कअख विशुवत् रेखा तथा घअग प्रधानमध्याह्नरेखा हैं। इससे क्षितिजवृत्त में दो भाग उत्तरगोलार्ध, दक्षिणगोलार्ध तथा पूर्वगोलार्ध एवं पष्चिमगोलार्ध बनते हैं।

7. वृत्तखण्ड – केन्द्र से निकली हुई दो रेखा यदि चाप के उभयप्रान्त से संलग्न हों तो उस क्षेत्र को वृत्तांषक्षेत्र, या वृत्तखण्ड भी कहते है। अथवा ज्या से वृत्त के छेदित अंष को वृत्तखण्ड कहते है। प्रदर्षित क्षेत्र के कख पूर्णज्या से वृत्त का छेदित अंष द्वय कगख तथा कघख दो वृत्तखण्ड हैं। कघख वृत्तखण्ड तथा कगख लघुवृत्तखण्ड हैं।

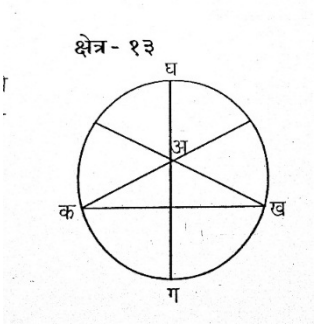

8. वृत्तपाद – केन्द्र से निकली हुई दोनों प्रान्तगत दो रेखा यदि परस्पर लम्ब हो तो उस वृत्तखण्ड को वृत्तपाद कहते हैं। अ केन्द्र से निकली हुई अक, अख, रेखा परस्पर एक दूसरे के उपर लम्ब है। अतः कख वृत्तचाप हैं। इस तरह से एक वृत्त में चार वृत्तपाद होते हैं।

क्षे. १४

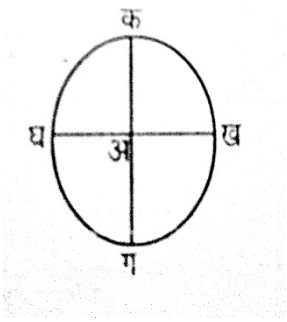

खगोल– खगोल एक काल्पनिक गोल हैं। जिस के केन्द्र में दर्शक रहता है। खगोल में स्थित विभिन्न ग्रहनक्षत्रों की स्थिति, गति, आदि का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से करते हैं। यह खगोल क्या हैं? ख अर्थात् आकाश। आकाश को देखते हैं तो, गोल प्रतीत होता है। हमारे क्षितिज के उपर ग्रहनक्षत्रादि से सुसज्जित अनेक गोल स्थापित है। निरीक्षण से पता चलता है कि गोलार्ध पूर्व से पश्चिम की ओर भ्रमण करता है। अत: इससे ज्ञात होता है की आकाश अर्धगोल नहीं, बल्कि गोल है। जिसे 'खगोल' कहते हैं। दिन में नीलाकाश से आवृत्त क्षितिजाभिप्रायिक विस्तार गोलात्मक है।

भूगोल– भू अर्थात् पृथ्वी। पृथ्वी गोलाकार है। अत: उसे 'भूगोल' कहते है। भूगोल पृथुत्वात् समवद् दिखाई देती है। चल होकर भी अचल प्रतीत होती है। पृथ्वी के गोल होने के अनेक प्रमाण है।

1. सूर्योदय एक ही समय पृथ्वी के हर देश में नहीं होता है। सर्वप्रथम पूर्ववर्ती देशों में सूर्योदय होता है। तत्पश्चात् पश्चिम देशों में। इस से ज्ञात होता है की पृथ्वी समतल नहीं है। पृथुलता हेतु हम एक समय में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म लघु भाग का ही दर्शन कर सकते हैं। कहा जाता है की वृत्त का ९६ वाँ भाग सरलरेखावत् प्रतीत होता है।

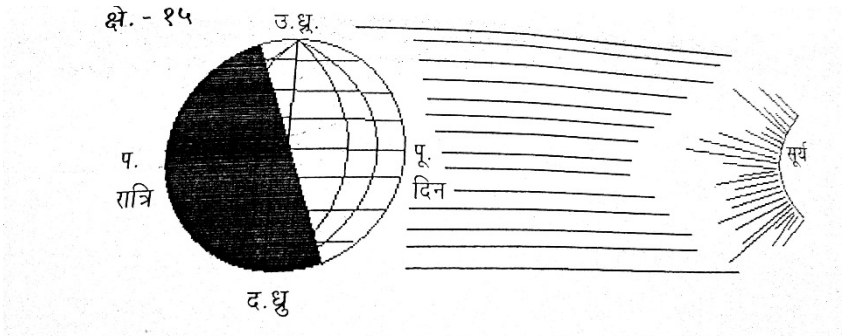

2. चन्द्रग्रहणकाल में सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में पृथ्वी के रहने से चन्द्रग्रहण होता है। ग्रहणकाल में चन्द्र का आच्छादित भाग गोलाकार दिखता हैं। क्योंकि गोलाकार वस्तु का प्रतिबिम्ब भी गोल होता है। अत: पृथ्वी गोलाकार है, जिसे 'भूगोल' कहते हैं।

इसके अतिरिक्त गोल में अनेकों आभाषिक वृत्त बनते हैं। उनका विस्तार से अध्ययन आप आगे की इकाई में करेंगे।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिशषास्त्र के द्वारा मानव आदिकाल से ब्रह्माण्ड के विभिन्न रहस्यों के अन्वेशण में प्रयत्नषील है। मानव की जिज्ञासा से भूगोलीय तथा खगोलीय विभिन्न विशयों के बारे में अनेक प्रकार की षंकाओं तथा उलझे हुए प्रष्नों के सही समाधान भी होते हुए आए है। ज्योतिशषास्त्र के अन्तर्गत गोलज्ञान के बिना अन्य ज्ञान सम्भव नहीं है। गोलज्ञान तथा उसकी संरचना आदि सिद्धान्त स्कन्ध का मूल विशय है। इनके ज्ञान के बिना पृथ्वी ग्रह तथा नक्षत्रों के प्रभाव से विष्व मे ंपरिवर्तन की चर्चा करना भी असम्भव है। गोलज्ञान के लिए पाटीगणित, क्षेत्रमिति, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति, गोलीयज्यामिति, गोलीयत्रिकोणमिति, चलनकलनादि का ज्ञान क्रमिक विकास के अनुसार परम आवष्यक है।

खगोलीयपिण्डों की परस्पर दूरी के माप के लिए सूर्यादि ग्रहों के उदयास्तकाल, सूर्यादि का ग्रहणकाल, ग्रहस्पष्टीकरण, विभिन्न देशों के अक्षांश, रेखांश आदि के ज्ञान, तथा इसी प्रकार अनेक गोलीयप्रश्नों के समाधान के लिए सर्वप्रथम सुन्दर, सुदृढ़ बांस या धातु की शलाकाओं से दृष्टान्तगोलानुरूप भूगोल के उपर काल्पनिक खगोल, ग्रहगोल तथा भगोल आदि की रचना की जाती है। दृश्टान्तगोल में ग्रहों के उदयास्तादि ज्ञान के लिए क्षितिज, उन्मण्डलादि वृत्तों की रचना की जाती है। अक्षांषज्ञान के लिए उन्मण्डलक्षितिज, स्वदेषीयक्षितिज तथा याम्योत्तरवृत्त की रचना की जाती है। इनसे ग्रहो की षर, क्रान्ति आदि का ज्ञान किया जाता है।

पृथ्वी के किस स्थान पर दिन और रात्रि पूरे वर्ष पर्यन्त समान होते है? सारे विश्व में दिन रात की लम्बाई कब-2 बराबर होती है ? उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन कब होता है? राहु और केतु

क्या है? अयनांश की प्रवृत्ति कहॉ से होती है? अक्षांश, लम्बांश का ज्ञान कैसे होता है? ग्रहण कब और क्यों होता है? इस प्रकार अनेक प्रश्नों के समाधान के लिए गोलज्ञान अत्यावश्यक है। खगोलीय विभिन्नमान, स्थित्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष सापेक्ष काल्पनिक रेखाओं की रचना की जाती है। ये सभी तथ्य गोल से सम्बद्ध हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

गोल– गुड में अच् प्रत्यय लगकर गोल शब्द बना है। अर्धवृत्त को स्वव्यासरेखोपरि घूमाने से जो क्षेत्र बनता है, उसका नाम गोल है।

बिन्दु– नियत स्थान चिह्न को बिन्दु कहते है।

रेखा– बिन्दुओं के समुच्चय को रेखा कहते है।

परिधि– वृत्त के चारों ओर के क्षेत्र को परिधि कहते है।

चाप– वृत्त के परिधि खण्ड को चाप कहते है।

पूर्णज्या तथा ज्या– परिधिस्थ किसी भी दो बिन्दु के योगरूप सरलरेखा को पूर्णज्या कहते है। वा चाप के दोनों प्रान्त को मिलाने वाली योगरेखा को प्राचीनतम में ज्या कहते है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.ख 2. क 3. ख 4. ख 5. ग 6. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) गोल परिभाषा– डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा– गणपति लाल शर्मा

(घ) गोल परिचय– डॉ. शुभास्मिता मिश्रा

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

गोल परिभाषा – कमलाकान्त पाण्डेय।

गोल परिभाषा– गणपति लाल शर्मा

सूर्यसिद्धान्त– प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गोल से आप क्या समझते है?
2. ज्योतिष शास्त्र में गोल की महत्ता पर प्रकाश डालें।
3. बिन्दु, वृत्त, रेखा तथा गोल की सक्षेत्र परिभाषा लिखिये।
4. चाप, ज्या तथा वृत्तखण्ड को समझाते हुए लिखिये।
5. भूगोल तथा खगोल का उल्लेख कीजिये?

इकाई – 2 विविध आभासिक वृत्तादि की परिभाषा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विविध आभासिक वृत्तादि की परिभाषा

2.4 सारांश

2.5पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) -350 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – विविध आभाषिक वृत्तादि की परिभाषा। इससे पूर्व आपने गोल का आरम्भिक परिचय से अवगत हो चुके हैं। अब आप उसी गोल से जुड़े विविध आभाषिक वृत्तादि की परिभाषादि के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'गोल' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष का ज्ञाता गणितीय विधा में और निपुण हो जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण 'गोल शास्त्र' काल्पनिक है। यह बताना कठिन है कि गोल में कौन कहाँ निश्चित रूप से स्थित है। तथापि गोल ज्ञान आकाशीय खगोलपिण्डों की स्थिति को समझने के लिए परमावश्यक है।

अत:आइए इस इकाई में हम लोग 'विविध वृत्तादि' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल में विविध वृत्तों को समझा सकेंगे।
- विविध वृत्तों को परिभाषित कर सकेंगे।
- गोल के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- विविध वृत्तों के माध्यम से गोल स्वरूप को समझा सकेंगे।

2.3 विविध वृत्तादि की परिभाषा

सिद्धान्त ज्योतिष में 'गोल' का ज्ञान परमावश्यक है। गोलज्ञान के बिना हम ग्रहों की वास्तविक स्थिति को ठीक–ठीक नहीं समझ सकते हैं। विदित हो कि सम्पूर्ण गोल काल्पनिक मानकर आचार्यों ने उसमें वृत्तादि की स्थिति की बात कही है, जो कि किसी स्थान विशेष पर निश्चित रूप में विद्यमान नहीं है। तथापि गोलज्ञान सम्पूर्ण भौगोलिक, आकाशीय स्थिति को समझने के लिए जरूरी है। अतः सर्वप्रथम गोलबन्ध का ज्ञान बतलाते हुए उसके अन्तर्गत आने

वाले क्रमशः विविध वृत्तादि की परिभाषा की चर्चा इस इकाई में करेंगे।

1- गोल – बिंदु से रेखा, रेखा से वृत्त तथा वृत्त से गोल की उत्पत्ति होती है। अर्धवृत्त को अपने स्थिर व्यास पर चारों ओर घूमाने से वह जितने घनात्मक स्थान को घेरता है, उसको गोल या गोला कहते है। गोल के प्रत्येक बिन्दु की दूरी उसके एक निष्चित स्थिर केन्द्र बिन्दु से समान रहती है। गोल के लिए श्लोक है-

वृत्तार्धे स्वस्थिरव्यास रेखोपरि समन्ततः।
भ्राम्यमाणे घनक्षेत्रं जायते गोल एव सः।।
केन्द्रं तदर्धवृत्तस्य गोलकेन्द्रं च कथ्यते।
भूमिकेन्द्रं तदेवाऽत्र कल्पनीयं विपश्चिता।।

स्वकीय स्थिर व्यास रेखा के ऊपर चारों तरफ वृत्तार्ध में घुमाने (भ्रमण करने) से जो घन क्षेत्र बनता है, उसे गोल कहते हैं। उस अर्धवृत के केन्द्र को गोल केन्द्र कहते हैं और उसी केन्द्र को विद्वानों ने भूमि केन्द्र की कल्पना किया है अर्थात् भूमिकेन्द्र कहा है। अर्धवृत्तं स्वव्यासरेखोपरि भ्राम्यमाणं गोलमुत्पादयति।

2. खगोल – उस कल्पित रूप से खोखले गोले को कहते हैं जिसकी भीतरी सतह पर यावत् आकाशीय तारे एवं ग्रह पिण्डादि निरूपित किये जाते हैं और जिसका केन्द्र स्वयं द्रश्टा होता है। द्रष्टा के क्षितिज से उपरवाले खगोल का आधा भाग ही उसे हर एक समय में दृष्य होता है, शेष आधा भाग क्षितिज से नीचे रहने के कारण अदृश्य होता है।
3. धरातल ;च्संदमद्ध – जहॉ केवल दैर्घ्य एवं विस्तार मात्र हो, पिण्ड कुछ भी न हो, उसे धरातल कहते हैं। जिस धरातल को सरल सीधी रेखा सर्वाषतया स्पर्ष करे, वह सम धरातल या समतल या केवल तल कहा जाता है, उससे भिन्न विशम धरातल समझना चाहिये।
4. महद्वृत्त एवं लघुवृत्त ;ळतमंज ब्पतबसमे –ैउंसस ब्पतबसमेद्ध – खगोलवर्ती प्रत्येक धरातल वृत्ताकार होता है। और जिस वृत्त का धरातल खगोल के केन्द्र से होकर जाय, वह 'महद्वृत्त' कहा जाता है तथा उसी को त्रिज्या वृत्त भी कहते है, उस महदवृत्त से भिन्न गोलान्तर्गत वृत्त को 'लघुवृत्त' कहा जाता है।
5. खगोलीय वृत्त केन्द्र (ब्मदजतमे वि ैचीमतपबंस ब्पतबसमेद्ध – खगोल पृश्ठगत वृत्तों के तीन केन्द्र होते है, एक खगोलान्तर्गत गर्भ–केन्द्र तथा दो पृश्ठ केन्द्र होते है। जैसे, वृत्त के परिधिगत प्रत्येक बिन्दु से तुल्य दूरी पर जो बिन्दू रहता है, वह उस वृत्त का केन्द्र कहलाता है, अतएव वह गोलगर्भ में एक केन्द्र हुआ तथा इस केन्द्र से वाम एवं दक्षिण तरफ जानेवाली

सरल रेखा खगोल–पृश्ठ के जिन दो बिन्दुओं को स्पर्ष करती है, वे दो पृश्ठ–केन्द्र हुये। इस तरह हर खगोलीय वृत्त के तीन केन्द्र – बिन्दु होते हैं।

6. क्रान्तिवृत्त, नाक्षत्र वर्श और नाक्षत्र दिन– आकाशीय अन्य ग्रहों की भॉति हमारी पृथ्वी भी एक ग्रह है। ग्रह उस खगोलवर्ती पिण्ड को कहते हैं, जो किसी अन्य स्थिरप्राय खगोलवर्ती पिण्ड के चारों ओर घूमता हो। वह पिण्ड जो स्वयं किसी अन्य पिण्ड की परिक्रमा नहीं करता, तारा कहलाता है। इस दृष्टि से सूर्य भी एक तारा है, जिसके चारों ओर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह घूमते रहते हैं। पृथ्वी आदि ग्रहों के सूर्य के चतुर्दिक भ्रमण करने से आकाश में उनके जो भ्रमण–मार्ग बनते हैं, वे उनके कक्षा–पथ या केवल कक्षा कहे जाते हैं। खगोलस्थपृथ्वी का कक्षा–पथ क्रान्तिवृत्त कहलाता है जिसके पृष्ठ–केन्द्र को 'कदम्ब' कहते हैं। क्रान्तिवृत्त को राशिवलय भी कहते हैं। क्रान्तिवृत्त के किसी स्थिर बिन्दु या नक्षत्र से चलकर पुनः उस बिन्दु आने में पृथ्वी को जितना समय लगता है, वह नाक्षत्र सौरवर्ष कहा जाता है।

पृथ्वी में सूर्य की परिक्रमा के अलावा अन्य गतियॉ भी है। जैसे, पृथ्वी के उत्तर दक्षिण ध्रुवों के बीच में एक सरल रेखा खींची जाय तो वह भूगर्भ –केन्द्र से होती हुई दोनों को मिला देगी। इसी कल्पित रेखा को पृथ्वी का भ्रमणाक्ष या केवल अक्ष कहते हैं। भ्रमणाक्ष कहने का कारण यह है कि पृथ्वी सदैव इस कल्पित रेखा के चारों ओर घूमती रहती है। पृथ्वी अपने अक्ष पर पष्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, इसलिए सूर्य तारे आदि प्रतिदिन पूर्व से पष्चिम की ओर जाते दिखाई देते है, जैसा कि आर्यभट् ने कहा है –

अनुलोम गर्तिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत समपश्चिमगानि लंकायाम्।।

पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक बार घूम जाने में 60 नाक्षत्र घटी या 24 घण्टे लगते हैं। इसको नाक्षत्र अहोरात्र भी कहते हैं।

7. नाड़ीवृत्त, उत्तरगोल और दक्षिणगोल – उपर्युक्त क्रान्तिवृत्त पर हमारी पृथ्वी का अक्ष लम्ब नहीं है, बल्कि कुछ झुका हुआ है जिसके कारण और क्रान्तिवृत्त के समतल में करीब 66 पूर्णांक 1/2 का अन्तर है। इस तरह क्रान्तिवृत्त पर तिर्यक झुकी हुई पृथ्वी के केन्द्र और दक्षिणोत्तर ध्रुवों से जानेवाली सरल रेखा खगोलपृश्ठ के जिन दो बिन्दुओं को स्पर्ष

करती है, वे क्रमषः खगोलीय दक्षिण एवं उत्तर ध्रुव या ध्रुवस्थान कहे जाते हैं। उत्तर ध्रुव–बिन्दु के समीपस्थ तारे को ध्रुवतारा कहते हैं। ध्रुव बिन्दु से 90 अंश के व्यासार्ध से खींचे गये वृत्त को विषुवद् वृत्त कहते हैं एवं इस विषुवद् वृत्त के पृष्ठ केन्द्र उत्तर, दक्षिण ध्रुव बिन्दु हैं। पृथ्वी के दक्षिणोत्तर ध्रुवस्थान एवं खगोलीय ध्रुवस्थान एक सूत्रगत होने के कारण भूगोल का विषुवद्वृत्त और खगोलीय विषुवद्वृत्त दोनों एक ही धरातल में हैं ओर जिस तरह भौगोलिक विषुवद्वृत्त भूगोल को उत्तरी भूगोलार्ध एवं दक्षिणी भूगोलार्ध , इन दो भागों में विभाजित करता है, उसी तरह खगोलीय विशुवद्वृत्त खगोल को उत्तर गोल एवं दक्षिण गोल इन दो भागों में विभाजित करता है। खगोलीय विशुवद्वृत्त को भारतीय सिद्धान्त ज्योतिश में नाड़ीवृत्त अथवा नाडीवलय भी कहा गया है, क्योंकि इसी वृत्त में होरादि या घटयादि काल–गणना की जाती है। घटी का ही दूसरा नाम नाड़ी है। खगोल में यह वृत्त क्रान्तिवृत्त से करीब 23।। अंष का कोण बनाता है, जिसको परम क्रान्ति कोण कहते है।

8- भूगोल स्वरूपम्– गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भूपिण्ड को 'भूगोल' कहते हैं। यह भूगोल स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि- भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा उर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि समझना चाहिए। यथा गोल परिभाषा में इसके लिए श्लोक भी इस प्रकार कहा गया है –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् तथा।।
आवृत्तोऽयं क्रमाच्चन्द्र बुध शुक्राऽर्क भूभुवाम्।
गोलैर्जीवार्किभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

विशेष– पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। 'वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते' के आधार पर (अर्थात् पृथुत्वात्) समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपरऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

9. स्वस्थान – भूमि पर जो जहाँ स्थित है, वही उसका पृष्ठस्थान या स्वदेश कहलाता है। यथा-

भूमौ तिष्ठति यो यत्र पृष्ठस्थानं तदुच्यते।
स्वदेशोऽपि स एवास्य कथ्यते गणितागमे।।

अर्थात् भूमिपृष्ठे यो जनो यत्र तिष्ठति तत्तस्य पृष्ठस्थानं स्वदेशो वा उच्यते।

10. खस्वस्तिक - भूमिगर्भात् स्व्देशस्पृक् सूत्रं यत्र नभस्सदाम्।
गोले लग्नं खमध्यं तत् खस्वसितकमपीरितम्।।

अर्थात् भूकेन्द्र से स्वदेश को स्पर्श करता हुआ सूत्र आकाश में जहाँ लगता है, वही उसका खमध्य अथवा खस्वस्तिक कहलाता है। गोलाकार भूपिण्ड के मध्य को भूकेन्द्र कहते है। गोलेलग्न का तात्पर्य चन्द्रादि ग्रहों के गोल पृष्ठ में संलग्न होने से है।

11. ध्रुवस्थान - भूकेन्द्र से ध्रुवनक्षत्रगत सूत्र जिस गोल में जहाँ लगता है, वहाँ उस गोल में वह ध्रुवस्थान कहा जाता है। सौम्य (उत्तर) ध्रुवस्थान को देव खस्वस्तिक एवं याम्य (दक्षिण) ध्रुवस्थान को दैत्यखस्वस्तिक कहते हैं। यथा –

भूकेन्द्राद् ध्रुवगं सूत्रं यद्गोले यत्र संयुतम्।
तद्गोले तद् ध्रुवस्थानं गोलविज्ञैर्निगद्यते।।
सौम्ययाम्ये ध्रुवस्थाने खमध्ये देवदैत्ययो:।।

उन्मण्डल का याम्योत्तर वृत्त के साथ उत्तरदिशि सम्पात् को उत्तरी ध्रुवस्थान एवं दक्षिणदिशि सम्पात् को दक्षिणध्रुवस्थान कहते हैं। उत्तर ध्रुवस्थान पर देवताओं का एवं दक्षिण ध्रुवस्थान पर दैत्यों का निवास स्थान है।

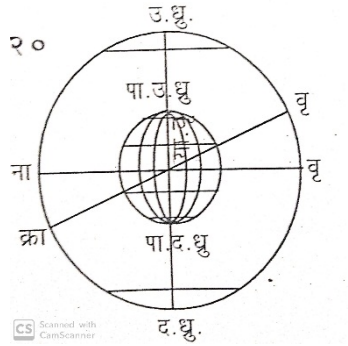

क्षेत्र में,

उ.ध्रु – उत्तरीध्रुवस्थान, द.ध्रु – दक्षिणी ध्रुवस्थान, या.वृ – याम्योत्तर वृत्त, नावृ – नाड़ीवृत्त।

12. गोलरचना प्रकार: - बाँस के इष्ट शलाकाओं से उत्पन्न मजबूत, चिकना (जो देखने में अच्छा लगे) राशि, अंश, कलादि अंकित वृत्त का निर्माण कर तद् वत् गोल रचना विधि से विद्वानों को गोल बनाना चाहिए। यथा –

वंशादिष्ट शलाकोत्थैर्दृढै: श्लक्षणै: सुवृत्तकै:।
अंकितैर्भगणांशाद्यैर्गोलं विरचयेद् बुध:।।

13. याम्योत्तर वृत्त एवं क्षितिज वृत्त – खमध्य और दोनों ध्रुवस्थानों में जाने वाले वृत्त को याम्योत्तर वृत्त कहते हैं। खमध्य से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त को क्षितिजि वृत्त कहते हैं और उसी वृत्त

के गर्भीय क्षितिज वृत्त भी कहते हैं। स्वपृष्ठ स्थान से क्षितिज धरातल के समानान्तर धरातल को पृष्ठ क्षितिज कहते हैं। यथा –

खमध्यध्रुवयोर्लग्नं वृत्तं याम्योत्तरं तथा।
खमध्यतो नवत्यंशैर्वृत्तं तत् क्षितिजं स्मृतम्।।
गर्भीयं पण्डितैरेवं तद्भूतलसमान्तरम्।
स्वस्थानाद् भूतलं यच्च तत्पृष्ठक्षितिजं स्मृतम्।।

खमध्यध्रुवयोर्गतं वृत्तं याम्योत्तरवृतम्। खमध्यतोनवत्यंशेन विहितं वृत्तं क्षितिजवृत्तम्।

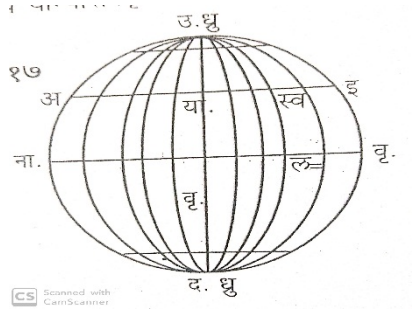

उपर क्षेत्र में - उ.ध्रु = उत्तरी ध्रुवस्थान, द.ध्रु = दक्षिणी ध्रुवस्थान, यावृ = याम्योत्तर वृत्त, नावृ = नाड़ीवृत्त = भूध्यपरिधि, अइ = स्पष्टपरिधि, स्व = स्वदेश, ल = स्वदेशीय निरक्षदेश।

14. समस्थान पूर्वापरवृत्त एवं पूर्वापरस्वस्तिक - याम्योत्तरवृत्त क्षितिजवृत्त में जहाँ लगता है, उसे समस्थान कहते हैं। अर्थात् याम्योत्तर वृत्त एवं क्षितिजवृत्त के सम्पात् बिन्दु को समस्थान कहते हैं। उत्तरदिशि सम्पात् को उत्तरीसमस्थान एवं दक्षिणदिशि सम्पात को दक्षिणसमस्थान कहते हैं। समस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को पूर्वापरवृत्त और सममण्डल (समवृत्त) कहते हैं। पूर्वापरवृत्त क्षितिज वृत्त में जहाँ पूर्वदिशा में लगता है, उसे पूर्वस्वस्तिक एवं पश्चिम दिशा में जहाँ स्पर्श करता है, उसे पश्चिम स्वस्तिक कहते है। यथा –

याम्योत्तरे कुजं यत्र लग्नं तत्समचिह्नकम्।
समस्थानान्नवत्यंशैर्वृत्तं पूर्वापरं हि तत्।।
समवृत्तं च तद्यत्र लग्नं स्थानद्वये कुजे।
तत् पूर्वस्वस्तिकं प्राच्यां पश्चिमस्वस्तिकं परम्।।

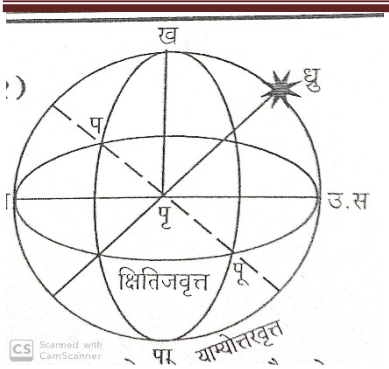

क्षेत्र में, स बिन्दु से 90 अंश की दूरी पर ख, प, पा, पू – पूर्वापर वृत्त, उस – उत्तरीसमस्थान। पू- पूर्वस्वस्तिक, प – पश्चिम स्वस्तिक।

अभ्यास प्रश्न –

1. स्वकीय स्थिर व्यास रेखा के ऊपर चारों तरफ वृत्तार्ध में घुमाने (भ्रमण करने) से जो घन क्षेत्र बनता है, उसे क्या कहते हैं।

   क. खगोल ख. गोल ग. भूगोल घ. भगोल

2. जहाँ केवल दैर्घ्य एवं विस्तार मात्र हो, पिण्ड कुछ भी न हो वह क्या कहलाता है।

   क. वृत्त ख. धरातल ग. गोल घ. रेखा

3. भूकेन्द्र से ध्रुवनक्षत्रगत सूत्र जिस गोल में जहाँ लगता है, वहाँ उस गोल में वह क्या कहा जाता है।

   क. ध्रुवस्थान ख. खमध्य ग. खस्वस्तिक घ. क्षितिजस्थान

4.खमध्य और दोनों ध्रुवस्थानों में जाने वाले वृत्त को क्या कहते हैं।

   क. पूर्वापर वृत्त ख. क्षितिज वृत्त ग. याम्योत्तर वृत्त घ. कोण वृत्त

5. ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं।

   क. नाड़ीवृत्तख. विषुववृत्त ग. कालवृत्त घ. इनमें सभी

6. कदम्ब स्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं।

   क. नाड़ीवृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. क्षितिज वृत्त घ. कोण वृत्त

15. कोणस्थान एवं कोणवृत्त - पूर्वस्वस्तिक और पश्चिमस्वस्तिक से दोनों तरफ ४५ अंश से अन्तरित चार (४) कोण स्थान होते हैं। उस कोणस्थान और खमध्य में संलग्न महदवृत्त को कोणवृत्त और विदिग् वृत्त कहते हैं।

पूर्वस्वस्तिकतस्तद्वत् पश्चिमस्वस्तिकात् कुजे।

शराब्ध्यंशा ४५ न्तरे ज्ञेयं कोणस्थानचतुष्टयम्।।
कोणस्थाने खमध्ये च यद्बृहन्मण्डलं गतम्।
कोणवृत्तं च तज्ज्ञेयम् विदिगवृत्तं तदेव हि।।

16. नाड़ीवृत्त एवं निरक्षदेश - ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को नाड़ीवृत्त, विषुववृत्त और कालवृत्त कहते हैं। उसके धरातलगत देश को निरक्षदेश कहते हैं और उस देश में अक्ष से उत्पन्न (अक्षोद्भवा:) ध्रुवतारा के उन्नतांश नहीं होते है। अर्थात् जहाँ का अक्षांश शून्य हो उसे निरक्ष देश कहते हैं। जैसे – लंका आदि।

ध्रुवस्थानान्नवत्यंशै र्नाड़ीवृत्तं तदुच्यते।
तदेव विषुवं वृत्तं कालवृत्तमपीरितम्।।
तद्धरातलगो देशो निरक्ष: कथ्यते यत:।
न सन्त्यक्षभवास्तत्र ध्रुवतारोन्नतांशका:।।

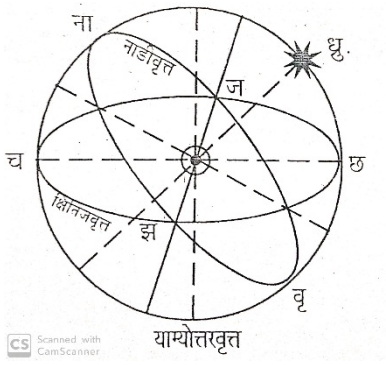

क्षेत्र में, ख – स्वखमध्य, ध्रु – ध्रुवतारा, नावृ – नाड़ीवृत्त, चछजझ- क्षितिजवृत्त।

17. लंका रेखादेश - निरक्ष देश में लंका है अर्थात् लंका का अक्षांश शून्य हैं। याम्योत्तर वृत्त को ही रेखावृत्त कहते हैं तथा उसके धरातल स्थित देश को रेखादेश कहते हैं।

लंका निरक्षदेशेऽस्ति तद्याम्योत्तरमण्डलम्।
रेखाख्यं तत्र यो देशो रेखादेश: स उच्यते।।

18. मध्यरेखा परिभाषा – जो लंका उज्जयिनी के ऊपर से कुरूक्षेत्र आदि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरु पर्यन्त जाता है, उसे पृथ्वी (भूमण्डल) की मध्यरेखा कहते हैं।

यल्लंकोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुव:।।

19. स्वदेशाभिप्रायेण निरक्षखस्वस्तिक और उन्मण्डल – नाड़ीवृत्त में स्वयाम्योत्तर वृत्त जहाँ लगता है उसे स्वनिरक्षखमध्य कहते हैं। निरक्षखमध्य से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को उन्मण्डल कहते हैं और वह उन्मण्डल पूर्वस्वस्तिक पश्चिम स्वस्तिक के साथ-साथ दोनों ध्रुव स्थानों को भी स्पर्श करता है।

यत्र याम्योत्तरे लग्नं नाडिकामण्डलं च तत्।
निरक्षीयखमध्यं स्यात् नवत्यंशैस्ततो हि यत्।।
वृत्तमुन्मण्डल नाम तत् पूर्वस्वस्तिके गतम्।
ध्रवुस्थानेऽपि संलग्नं पश्चिमस्वस्तिकेऽपि च।।

20. कदम्बवृत और क्रान्तिवृत्त – ध्रुवस्थान से जिनांश २४ अंश त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को कदम्बवृत्त कहते हैं, और कदम्बवृत्त में ही प्रवह वायु के द्वारा कदम्ब ताराभ्रमण करता है। कदम्ब तारा से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्रान्तिवृत्त और भवृत्त कहते हैं। इसी क्रान्तिवृत्त में सूर्य निरन्तर भ्रमण करता है।

जिनांशैर्यद् ध्रुवाद् वृत्तं तत् कदम्बर्क्षमण्डलम्।
यतस्तस्मिन् कदम्बर्क्षं भ्रमति प्रवहेरितम्।।
यत् कदम्बान्नवत्यंशैर्वृतं तत् क्रान्तिमण्डलम्।
भवृत्तं च तदेवाऽत्र भ्रमत्यर्को निरन्तरम्।।

21. गोलीय महदवृत्तों का अन्तर - गोलपृष्ठ पर दो महद्वृत्तों का योग ६ राशि के अन्तर पर दो स्थानों में होता है। दोनों योगों से तीन राशि के अन्तर पर दोनों महद्वृत्तों का परमान्तर होता है।

षड्राश्यन्तरितौ योगौ गोले त्रिज्योत्थवृत्तयो:।
राशित्रये तु योगाभ्यां तयो: स्यात् परमान्तरम्।।

22. गोलसन्धि - नाड़ीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का दो स्थानों पर योग होता है। उन दोनों योगों के बीच में एक मेषादि और दूसरा तुलादि होता है। इस दोनों योगों को गोलसन्धि कहते हैं। एवं दोनों गोलसन्धियाँ क्रान्तिवृत्त चल होने के कारण चल हैं। मेषादि से क्रान्तिवृत्त के तुल्य द्वादश १२ भाग मेषादि द्वादश राशियाँ कही गयी हैं। उन राशियों में नाड़ीवृत्त से उत्तर में मेषादि षड् राशियाँ एवं दक्षिण में तुलादि षड्राशियाँ स्थित हैं।

नाड़ीभवृत्तयोर्योगौ ज्ञेयौ मेषतुलादिकौ।
गोलसन्धिसमाख्यौ तौ भूगोलचलनाच्चलौ।।
भवृत्तस्य समा भागा राशयो द्वादशस्मृता:।
नाड़ीवृत्तोत्तरेऽजाद्यास्तुलाद्या दक्षिणे स्थिता:।।

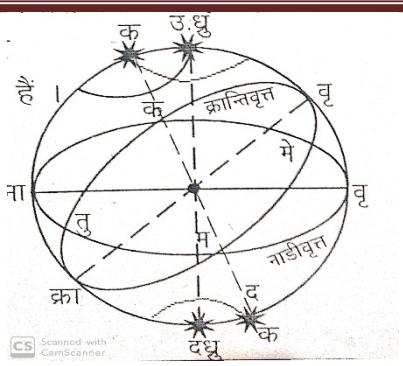

क्षेत्र में, उ.ध्रु – उत्तरध्रुव, द.ध्रु – दक्षिणध्रुव, उ.क. – उत्तरध्रुव से २४ अंश पर कदम्ब स्थन, द.क. –दक्षिण ध्रुव से २४ अंश पर कदम्ब स्थान, मे.तु - नाड़ीक्रान्तिवृत्तों के दो संपात है। क्रा.वृ – क्रान्तिवृत्त, ना.वृ – नाड़ीवृत्त। यह क्रान्तिपात गतिशील है, अत: गोलसन्धि तथा अयनसम्पात भी गतिशील है।

23. अयनवृत्त – गोलसन्धि से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को अयन वृत्त कहते हैं। और वह कर्कादि एवं मकरादि दो बिन्दुओं में तथा कदम्ब और ध्रवस्थानों में जाता है। यथा –

गोलसन्धेर्नवत्यंशे वृत्तं कर्क मृगादिकम्।
आयनं मण्डलं तत् स्यात् कदम्बध्रुवयोर्गतम्।।

24. चन्द्रादि ग्रहों के विमण्डल - अपनी-अपनी गति अनुसार (चन्द्र, भौम, बुध आदि) ग्रह जिस वृत्त में घूमते हैं, उस वृत्त को चन्द्रादि ग्रहों का विमण्डल कहते हैं। प्रत्येक ग्रहों के अलग-अलग विमण्डल होते हैं। विमण्डल के केन्द्र को विकदम्ब कहते हैं। विमण्डल और क्रान्तिवृत्त के सम्पात को 'पात' कहते हैं।

यत्र गच्छन्ति चन्द्राद्यास्तद्विमण्डलमुच्यते।

तत्तु चन्द्रादिखेटानामूहनीयं पृथक् पृथक्।।
विकदम्बाभिधं तस्य पृष्ठकेन्द्रमुदाहृतम्।
विमण्डले भवृत्तस्य सम्पात: पात उच्यते।।

25. राहु एवं केतु – चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं।

एवं चन्द्रस्य यौ पातौ तत्राद्यो राहुसंज्ञक:।
द्वितीय: केतुसंज्ञस्तौ ग्राहकौ चन्द्र-सूर्ययो:।।

26. दृग्मण्डल, उन्नतांश, शंकु, दृगज्या एवं दिगंश – ग्रहस्थान और खमध्य में जाने वाले वृत्त को दृग्वृत्त कहते हैं। दृग्वृत्त में क्षितिज से ग्रहपर्यन्त उन्नतांश और खमध्य से ग्रहावधि नतांश होता है। उन्नतांश की जीवा को शंकु और नतांश की जीवा को नतांशज्या कहते हैं। क्षितिजवृत्त में दृगवृत्त और पूर्वापर वृत्त के अन्तर को दिगंश कहते हैं। तथा दिगंश की जीवा को दृग्ज्या कहते हैं।

ग्रहस्थानादिसंलग्नं वृत्तं यच्च खमध्यगम्।
दृगवृत्तं कथ्यते तत्र ग्रहस्थानादिकावधि।।
क्षितिजादुन्नतांशा: स्यु: खमध्याच्च नतांशका:।
उन्नतांशज्यका शंकुर्नतांशज्या च दृग्ज्यका।।
दृग्वृत्तसमवृत्तान्त: क्षितिजे च दिगंशका:।
तज्या दिग्ज्या समाख्याता गोलविद्याविचक्षणै:।।

खमध्योर्गत वृत्तं दृग्वृत्तं तच्चलम्। खमध्याद् ग्रहावधिर्दृग्वृत्ते नतांशा:। नतांशोननवत्यंशा ९०- नतांशा: = उन्नतांशा:।

27. लग्न-चतुर्थ-सप्तम एवं दशम लग्न - उदयक्षितिज वृत्त (पूर्व) में क्रान्तिवृत्त लगता है, उसे लग्न कहते हैं। अस्तक्षितिजवृत्त (पश्चिम) में जहाँ क्रान्ति वृत्त लगता है, उसे सप्तम लग्न कहते हैं। याम्योत्तर वृत्त (उर्ध्व) में जहाँ क्रान्ति वृत्त लगता है, उसे दशम तथा याम्योत्तर वृत्त (अध:) में क्रान्ति वृत्त जहाँ लगता है, उसे चतुर्थ लग्न कहते है।

भवृत्तं प्राककुजे यत्र लग्नं लग्नं तदुच्यते।
पश्चात् कुजेऽस्तलग्नं स्यात् तुर्यं याम्योत्तरे त्वध:।।
उर्ध्वं याम्योत्तरे यत्र लग्नं तद्दशमाभिधम्।
राश्याद्यं जातकादौ तद् गृह्यते व्ययनांशकम्।।

28. दृक्क्षेपवृत्त, वित्रिभ, दृक्क्षेप एवं दृग्गति – लग्न बिन्दु से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेपवृत्त कहते हैं। दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा उर्ध्वसम्पात को वित्रिभ वित्रिभ लग्न कहते हैं। वित्रिभ के नतांशज्या को दृक्क्षेप तथा उसके उन्नतांशज्या को दृग्गति कहते हैं।

लग्नबिन्दोर्नवत्यंशै र्वृत्तं दृक्क्षेपमण्डल।
तद्भवृत्ते युतं यत्र कुजोर्ध्वं वित्रिभं हि तत्।।
वित्रिभस्य नतांशज्या दृक्क्षेप: कथ्यते बुधै:।
तथा तस्योन्नतांशज्या या सा दृग्गतिरूच्यते।।

लग्नस्थानान्नवत्यंशेन विहितं वृत्तं दृक्क्षेपवृत्तम्। दृक्क्षेपवृत्ते क्रान्तिवृत्तेनोर्ध्वसम्पातो वित्रिभलग्नम्। खमध्याद् वित्रिभावाधिर्दृक्क्षेपचापांशा: दृक्क्षेपवृत्ते। तेषां ज्या दृक्क्षेप:। दृक्क्षेपचापकोटि ज्या दृग्गति:।

29. वृत्त विशेषसंज्ञा, द्युज्या एवं क्रान्ति – जिन बिन्दुओं से जो वृत्त जाता हैं, उसकी उस बिन्दु से प्रोतवृत्त संज्ञा होती है। जैसे – कदम्ब स्थान में जाने वाले वृत्त को कदम्बप्रोत एवं ध्रुवस्थान से जाने वाले वृत्त को ध्रुवप्रोत वृत्त कहते हैं। ग्रहगतध्रुवप्रोत वृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते हैं तथा उसकी जीवा को द्युज्या कहते हैं। नाड़ीवृत्त से ग्रहपर्यन्त को क्रान्ति कहते हें।

यच्च यद्बिन्दुगं वृत्तं तत्तु तत्प्रोतमुच्यते।
कदम्बर्क्षगतं यद्वत् कदम्बप्रोतमुच्यते।।
ध्रुवर्क्षगं ध्रुवप्रोतमेवं ज्ञेयं स्वबुद्धित:।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।।
द्युज्याचापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।
नाड़ीवृत्ताद ग्रहं यावत् क्रान्ति: सैवाऽपम: स्मृत:।।

30. अहोरात्रवृत्त, उन्नतघटी, नतघटी, दिनार्धमान, कुज्या एवं चरज्या - ध्रुवस्थान से द्युज्याचापांश द्वारा निर्मित वृत्त को अहोरात्र वृत्त कहते हैं और एक केन्द्र होने के कारण वह नाड़ीवृत्त के समानान्तर होता है। ग्रहस्थान से याम्योत्तरवृत्त पर्यन्त नतघटी तथा ग्रहस्थान से क्षितिजपर्यन्त उन्नत घटी होती है। अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्र वृत्त में चरखण्ड होता है। उसकी ज्या (चरखण्डज्या) को कुज्या कहते हैं। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है, अर्थात् द्युज्यावृत्त में यदि कुज्या मिलता है तो त्रिज्या वृत्त में क्या?

$$\frac{\text{कुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{चरज्या।}$$

अहोरात्राख्यवृत्तं यद् द्युज्याचापांशकैर्ध्रुवात्।
तद्भवत्येककेन्द्रत्वान्नाड़ीवृत्तसमान्तरम्।।
तत्र खेटात् कुजं यावदुन्नता घटिका: स्मृता।
खेटाद्याम्योत्तरं यावन्नतघटय: स्मृता बुधै:।।
याम्योत्तरात् कुजं यावद् दिनार्धघटिकास्तथा।
कुज्योन्मण्डलयोर्मध्ये चरखण्डं द्युरात्रके।

तज्ज्या कुज्या चरज्या तु त्रिज्यापरिणता हि सा।।

ध्रुवस्थानाद द्युज्याचापांशेन विहितं वृत्तमहोरात्रवृत्तम्। षड्होरात्र वृत्तानि भवन्ति।

31. अग्रा, क्रान्त्यंश, अक्षांश एवं लम्बांश – क्षितिजवृत्त में पूर्वापरवृत्त और अहोरात्रवृत्त के अन्तर को अग्रा तथा उन्मण्डल वृत्त में पूर्वापरवृत्त और अहोरात्र के अन्तर को क्रान्त्यंश कहते हैं। याम्योत्तर वृत्त में समस्थान और ध्रुवस्थान के अन्तर को तथा खमध्य और निरक्षखमध्य के अन्तर को (याम्योत्तर वृत्त में) अक्षांश कहते हैं। खमध्य और ध्रुवस्थान के अन्तर को लम्बांश (याम्योत्तर वृत्त में) कहते हैं।

समस्थानाद् ध्रुवावधिरथवा खमध्यान्निरक्षखमध्यावधिर्याम्योत्तर वृत्तेऽक्षांशा:। ९०°– अक्षांशा: = लम्बांशा:।

पूर्वापरद्युरात्रान्त: क्षितिजऽग्रांशकास्तथा।
याम्योत्तरे तथाऽक्षांशा: समस्थानध्रुवान्तरे।।
खमध्यध्रुवयोर्मध्ये लम्बांशा दक्षिणोत्तरे।
निरक्षीयखमध्याच्च यावद्याम्यकुजं तथा।।

32. ग्रहस्थान, शर, क्रान्तिमान – ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, अर्थात् जिस बिन्दु पर स्पर्श करता है, उसे ग्रहस्थान कहते हैं। कदम्बप्रोतवृत्त में बिम्ब से स्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते हैं। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर को ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्ट शर कहते हैं। स्थान से नाड़ीवृत्तावधि ध्रुवप्रोतवृत्त में मध्यमा क्रान्ति होती है। मध्यमाक्रान्ति और स्पष्टशर के द्वारा संस्कार करने से बिम्ब से नाड़ीवृत्त पर्यन्त ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्टाक्रान्ति होती है।

ग्रहबिम्बकदम्बर्क्षगतं वृत्तं भमण्डले।
यत्र बिन्दौ युतं तत्र तद्ग्रहस्थानमुच्यते।।
बिम्बस्थानान्तरं तत्र मण्डले मध्यम: शर:।
स्थानबिम्बद्युरात्रान्तध्रुवप्रोते स्फुट: शर:।।
नाड़ीवृत्तावधि: स्थानान्मध्यमा क्रान्तिरूच्यते।
संस्कृता स्फुटबाणेन सा क्रान्तिर्भवति स्फुटा।
ग्रहबिम्बाद् ध्रुवप्रोते नाडिकामण्डालवधि:।।

ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्ते ग्रहबिम्बात् क्रान्तिवृत्तावधि: शर:। ग्रहबिम्बान्नाड़ीवृत्तावधि: ध्रुवप्रोतवृत्ते स्पष्टाक्रान्ति:। ग्रहबिम्बात् क्रान्तिवृत्तपर्यन्तं ध्रुवप्रोतवृत्ते स्पष्टशर:।

33. उपवृत्त, भुज एवं कोटि – ग्रहोरपरि समप्रोत वृत्त में ग्रह से पूर्वापरवृत्त पर्यन्त को भुजचाप और उसकी ज्या को भुज कहते है। तथा ग्रह से समस्थान पर्यन्त को कोटिचाप एवं समस्थान से कोटि चाप की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को उपवृत्त कहते हैं।

समस्थानात् कोटि चापांशेन निर्मितं वृत्तमुपवृत्तम्।।

34. विषुवांश एवं क्षेत्रांश - ग्रहस्थान पर गया हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त को जहाँ स्पर्श करता है, उसे विद्वानों ने विषुवांशाग्रह बिन्दु कहा है। विषुवांशाग्र बिन्दु से गोलसन्धि पर्यन्त नाड़ीवृत्त में ९० अंश से अल्प चाप को विषुवांश कहते है। गोलसन्धि से ग्रहस्थान पर्यन्त क्रान्तिवृत्त के क्षेत्रांश को भुजांश या ग्रहभुजांश कहते हैं। जिस क्षेत्र में क्रान्त्यंश भुज, विषुवांश कोटि, भुजांश कर्ण होता है, उसे चापजात्य त्रिभुज कहते हैं।

35. फलवृत्त एवं हार - ग्रहोपरिगत पूर्वापरस्वस्तिकप्रोतवृत्त (पूर्व एवं पश्चिम स्वस्तिक में जाने वाले वृत्त) को फलवृत्त कहते हैं। पूर्वापरवृत्त और फलवृत्त के अन्तर को फलचाप कहते हैं। फलचाप की जीवा को फलज्या कहते है। पूर्वकपालस्थग्रह हो तो पूर्वस्वस्तिक से ग्रहपर्यन्त तथा पश्चिमकपालस्थग्रह हो, तो पश्चिमस्वस्तिक से ग्रहपर्यन्त फलवृत्त में हारचाप होता है। हारचाप की जीवा को फलानयन के प्रसंग में हार कहते है।

36. सूत्र एवं चर चाप – ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोत नाड़ीवृत्त में जहाँ लगता है, वहाँ से क्षितिजपर्यन्त नाड़ीवृत्त में सूत्रचाप होता है एवं सूत्रचाप की जीवा को सूत्र कहते हैं। क्षितिजवृत्त अहोरात्रवृत्तसम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में जहाँ लगता है, वहाँ से क्षितिज वृत्त पर्यन्त नाड़ीवृत्त में चर एवं की जीवा को चरज्या कहते हैं।

37. बलन – जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धि क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मितवृत्त को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे। ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिजवृत्त में ही नाड़ीवृत्त और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्ट बलन कहते हैं।

यस्मात् खांकैस्तु यद् वृत्तं तस्य तत् क्षितिजं स्मृतम्।
ग्रहात् खाकांशकैर्यद्वद् ग्रहक्षितिजमुच्यते।।
आयनं बलनं ज्ञेयं ग्रहजक्षितिजेऽन्तरम्।

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोत- कदम्बप्रोतवृत्तयो:।
नाड़ीभवृत्तयोरेवमन्तरं तावदेव हि।।
अक्षजं बलनं तद्वन् नाडिका समवृत्तयो:।
अन्तरं तु ग्रहोत्पनक्षितिजे वा ग्रहोपरि।।
समप्रोतध्रुवप्रोत वृत्योरन्तरं च तत्।।
स्पष्टा तत्रान्तरं ज्ञेयं पूर्वापर भवृत्तयो:।
ग्रहोपरि समप्रोत कदम्ब प्रोतयोस्तथा।।

वलतीतिवलनम्। वलनं त्रिविधम्। ग्रहक्षितिजे नाड़ीक्रान्तिवृत्योरन्तरमायनवलनम्। तत्रैव ग्रहक्षितिजे नाड़ीपूर्वापरवृत्योरन्तरमाक्षवलनम्। अनयोसंस्कारेण स्फुटबलनं जायते। अर्थात् ग्रहक्षितिजे पूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्त स्पष्टबलनम्।। आयनवलनं ± आक्षवलनं = स्पष्टवलनम्।।

38. दृग्लम्बन एवं स्फुटलम्बन एवं नति – दृष्टिस्थान के भेद से ग्रह आकाश में अलग देखे जाते हैं। गर्भस्थान की दृष्टि से गर्भीय एवं पृष्ठस्थान की दृष्टि से देखे जाने पर पृष्ठीय ग्रह दिखाई पड़ता है। गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों के अन्तर को दृग्वृत्त में दृग्लम्बन और गर्भीयपृष्ठीय ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्त के अन्तर को क्रान्तिवृत्त में स्फुटलम्बन कहते हैं। तथा गर्भीयपृष्ठीय ग्रहों के शरान्तर को कदम्बप्रोतवृत्त में नति कहते हैं। इसका व्यवहार ग्रहणादि साधन में होता है।

विशेष– लम्बनं द्विविधम्। एक दृग्वृत्तीयं दृग्लम्बनम्। अर्थात् दृग्वृत्ते गर्भीयपृष्ठीयग्रहयोरन्तरं दृग्लम्बनम्। क्रान्तिवृत्ते स्पष्टलम्बनं द्वितीयम्। अर्थात् क्रान्तिवृत्ते गर्भीयपृष्ठीयसूर्ययोरन्तरं स्पष्टलम्बनम्। अस्य स्फुट लम्बनस्य वित्रिभेऽभाव:। पृष्ठक्षितिजे परमत्वम्। खमध्येऽपि अस्याभाव:।

लम्बनोत्पत्तौ यातायं लम्बितपृष्ठीयग्रहयोर्याभ्योत्तरमन्तरं नति:। कदम्बप्रोतवृत्तेनतिर्जायते। नते: परमत्वं वित्रिभे। पृष्ठक्षितिजे तु परमाल्का: नति:। खमध्येऽस्याभाव:।।

दृष्टिस्थनवशात् खेटो भगोले दृश्यते पृथक्।
गर्भदृष्ट्या स गर्भीय: पृष्ठीय: पृष्ठदृग्वशात्।।
कुगर्भीयकुपृष्ठीय खेटयोरन्तरं हि यत्।
दृङ्मण्डलगतत्वातत्त दृग्लम्बनमिहोच्यते।।
तद्ग्रहद्वयसंलग्न कदम्ब प्रोत वृत्तयो:।
क्रान्तिवृत्तेऽन्तरं यत् स्यात् तत्स्फुटं लम्बनं स्मृतम्।।
कुगर्भी कुपृष्ठीय खेटयोर्यत् शरान्तरम्।
सा नति: कथ्यते प्राज्ञैर्ग्रहणादि प्रसाधने।।

39. दृक्कर्म - क्रान्तिवृत्त में बिम्बपरिगतकदम्बप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्ट दृक्कर्म कहते हैं। क्रान्ति वृत्त में ही बिम्बोपरिगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को आयन दृक्कर्म तथा बिम्बगतसमप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्ष दृक्कर्म कहते हैं।

बिम्बोपरि समप्रोतकदम्बप्रोतवृत्तयो:।
अन्तरं क्रान्तिवृत्तीयं स्फुटं दृक्कर्म कथ्यते।।
आयनं तु ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोत मध्यगम्।
समप्रोत ध्रुवप्रोतान्तरं दृक्कर्म चाक्षजम्।।

40. शंकु - याम्योत्तरवृत के खेट (सूर्य) से क्षितिजवृत्त के ऊपर लम्ब को मध्यशंकु और पूर्वापर वृत्तस्थित सूर्य से क्षितिजवृत्त के ऊपर लम्ब को समशंकु कहते हैं। उन्मण्डलस्थ सूर्य से क्षितिजोपरि लम्ब को उन्मण्डलशंकु, कोणवृत्तस्थ सूर्य से क्षितिजोपरि लम्ब को कोणशंकु और इष्टस्थान सूर्य से क्षितिजोपरिलम्ब को इष्टशंकु कहते हैं।

41. हृति एवं अन्त्या – याम्योत्तर और अहोरात्रवृत्त के सम्पात से उदयास्तसूत्र पर की गयी लम्ब रेखा को हृतिसूत्र कहते हैं। यह हृतिसूत्र उत्तरगोल में द्युज्या और कुज्या के योग तुल्य तथा दक्षिणगोल में द्युज्या और कुज्या के अन्तर तुल्य होती है। पूर्वापरवृत्त से उदयास्तसूत्र पर लम्बरेखा को तदहृति तथा इष्ट स्थान से की गयी लम्बी रेखा को इष्ट हृति कहते हैं। द्युज्यावृत्त में स्थित हृति को ही त्रिज्यावृत्त में अन्त्या कहते हैं। द्युज्यावृत्त स्थित इष्ट हृति को त्रिज्यावृत्त में इष्ट अन्त्या कहते हैं।

याम्योत्तरस्थितात् खेटाल्लमब: स्वीयोदयास्तके।
हृति: सा गोलयोर्योगोन्तरं द्युज्याकुजीवयो:।।
पूर्वापरस्थितात् खेटात् तद्धृति: सा निगद्यते।
तदन्यत्रस्थितात् खेटात् सैवेष्ट हृतिरूच्यते।।
द्युज्यावृत्ते हृतिर्या सा त्रिज्यावृत्तेऽन्त्यका स्मृता।

42. पलभा – जिस दिन सायनसूर्य मेषादि (क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात्) में प्रवेश करता है, उस दिन के मध्याह्नकालिक द्वादशांगुलशंकु की छाया स्व-स्व स्थान में पलभा होती है।

सायनाजतुलादिस्थे सूर्य छाया दिनार्धजा।
द्वादशांगुलशंकारोया सा तत्र पलभा स्मृता।।

43.अक्षक्षेत्र - पलभा भुज और द्वादशांगुलशंकु कोटि, इन दोनों के वर्गयोगमूल को पलकर्ण या अक्षकर्ण कहते हैं। पलभाजन्य जात्यत्रिभुज को अक्षक्षेत्र कहते है। अक्षक्षेत्र में एक कोण अक्षांश

तुल्य होता है।

सा भुज: कोटिरित्यत्र द्वादशांगुलसम्मिता।
तयोवर्गयुतेर्मूलं पलकर्ण: स कथ्यते।।
जात्यत्रयस्रमिदं प्राज्ञैरक्षक्षेत्रमुदीरितम्।
यतोऽक्षांशसमश्चैक: कोणोऽस्त्यस्मिन् त्रिबाहुके।।

अक्षक्षेत्राणि– नीचे अक्षक्षेत्र का परिचय दिया जा रहा है -

	भुज	**कोटि**	**कर्ण**
१.	अक्षज्या	लम्बज्या	त्रिज्या
२.	पलभा	द्वांदशांगुलशंकु	पलकर्ण
३.	शंकुतल	मध्यमशंकु	हृति:
४.	कुज्या	क्रान्तिज्या	अग्रा
५.	अग्रा	समशंकु	तदहृति
६.	अग्राखण्ड	उन्मण्डलशंकु	कुज्या
७.	उन्मण्डलशंकु	अग्रादिखण्ड	क्रान्तिज्या
८.	इष्टशंकुतल	इष्टशंकु	इष्टहृति

44. भूपरिधि एवं देशान्तर –

भूपृष्ठीय ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को भुपृष्ठीय नाडी वृत्त और मध्यमभूपरिधि कहते हैं। इसी प्रकार ध्रुवस्थान से लम्बांश त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को अपना स्पष्ट भूपरिधि कहते हैं। रेखादेश से स्वस्थान तक पूर्वापर अन्तर को देशान्तर कहते हैं।

भूपृष्ठीय ध्रुवस्थानात् खांकांशैवृत्तमुच्यते।
भूपृष्ठे नाडिकावृत्तं मध्यभूपरिधिस्तथा।।
ध्रुवाल्लंबांशकैवृत्तं स्फुटो भूपरिधि: स्वक:।
देशान्तरं पूर्वापरं तत्र रेखाख्यदेशत:।।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सिद्धान्त ज्योतिष में गोल का ज्ञान अत्यावश्यक है। खगोलीय ग्रहपिण्डों की स्थिति के साथ-साथ भूगोलीय स्थिति का भी ज्ञान हमें गोल से ही प्राप्त होता है। यद्यपि सम्पूर्ण गोल आभाषिक वृत्तों पर आधारित है अर्थात् काल्पनिक है।

तथापि इसकी महत्ता ज्योतिष शास्त्र के अध्येताओं के लिए व्यापक है। भास्कराचार्य जी कहते है कि – भोज्यं यथासर्वरसं विनाज्ज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च। सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्थात्र।। अर्थात् गोल से अनभिज्ञ गणक (ज्योतिषी) नहीं हो सकता। अर्थात् ज्योतिषी के लिए गोल ज्ञान परमावश्यक है। इस इकाई में गोल, वृत्त की परिभाषा के साथ-साथ प्रमुख सभी आभाषिक वृतों की परिभाषा से आप सभी अवगत हो गये होंगे।

वृत्तों को कहीं-कहीं क्षेत्र द्वारा स्पष्ट भी कर दिया गया है। जिससे आप सभी को सरलता से समझने में आसानी होगी।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

गोल– अर्धवृत्तं स्वव्यासरेखोपरि भ्राम्यमाणं गोलमुत्पादयति।

महद वृत्त – भूकेन्द्रगामिना यानि वृत्तानि तानि सर्वाणि महद्वृत्तानि कथ्यन्ते।

स्वस्थान– भूमिपृष्ठे यो जनो यत्र तिष्ठति तत् पृष्ठस्थानं व स्वस्थानं कथ्यते।

याम्योत्तर वृत्त – खमध्य और दोनों ध्रुव स्थानों में जाने वाला वृत्त याम्योत्तर वृत्त कहलाता है।

क्षितिज वृत्त– खमध्य से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्षितिज वृत्त कहते हैं।

क्रान्ति वृत्त – कदम्ब से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को क्रान्ति वृत्त कहते हैं।

नाड़ी वृत्त – ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को नाड़ी वृत्त कहते हैं।

पूर्वापर वृत्त – समस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को पूर्वापर वृत्त कहते हैं।

निरक्ष देश – जिस देश का अक्षांश शून्य हो उसे निरक्ष देश कहते हैं।

दृक्क्षेप वृत्तम - लग्न स्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.ख 2. ख 3. क 4. ग 5. क 6. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) गोल परिचय– डॉ0 शुभास्मिता मिश्र

(ग) गोल परिभाषा– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) गोल परिभाषा– डॉ. गणपति लाल शर्मा

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

गोल परिभाषा– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय।

गोल परिभाषा– डॉ0 गणपति लाल शर्मा

सूर्यसिद्धान्त– प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम् – रघुनाथ सहाय

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गोल को परिभाषित करते हुए उसकी महत्ता बतलाइये।
2. याम्योत्तरवृत्त, क्षितिजवृत्त, नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त को सक्षेत्र परिभाषित कीजिये।
3. भूगोल स्वरूप, स्वस्थान, खस्वस्तिक, समस्थान तथा पूर्वापरवृत्त को परिभाषा लिखिये।
4. लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम लग्न तथा दृक्क्षेप, वित्रिभ तथा सत्रिभ को परिभाषित कीजिये।
5. अक्षांश, लम्बांश, अग्रा, लम्बन तथा नति का परिचय दीजिये?

इकाई – 3 क्रान्ति एवं परम क्रान्ति विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 क्रान्ति परिचय एवं परिभाषा

3.4 परम क्रान्ति विवेचन

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-350 के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – क्रान्ति एवं परमक्रान्ति विवेचन। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी क्रान्ति से जुड़े विषय के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'क्रान्ति' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से सूर्य की नाड़ीवृत्तीय स्थिति का पता लग पाता है। परमक्रान्ति का मान आचार्यों ने २४ अंश बतलाया है। क्रान्ति गतिशील है।

अत:आइए इस इकाई में हम लोग 'क्रान्ति एवं परमक्रान्ति' के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- क्रान्ति को परिभाषित कर सकेंगे।
- क्रान्ति के विभिन्न अवयवों को समझा सकेंगे।
- परमक्रान्ति को समझ लेंगे।
- क्रान्ति के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जायेंगे।
- क्रान्ति के गणितीय तथ्यों को समझा सकेंगे।

3.2 क्रान्ति परिचय एवं परिभाषा

भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर

हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

पुनरावृत्ति के रूप में आप इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं-

सायन मेष प्रवेश (21 मार्च के लगभग) काल पर (नाड़ी वृत्त पर) सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। 21 मार्च से सायन मेष, वृष, मिथुन राशि में सूर्य निरन्तर उत्तर दिशा में बढ़ता हुआ नाडी वृत्त से उत्तर की ओर जितना हटता है, उतनी ही उत्तराक्रान्ति बढ़ती रहती है। सायनमिथुनराशि के अन्त (21 जून के लगभग) में सूर्य अधिकतम $32^0/27$। के लगभग नाडीवृत से उत्तर जाता है। पुनः सायन कर्क प्रवेश काल (22 जून) से वापिस लौटकर धीरे धीरे 22 सितम्बर (सायन कन्या राशि की समाप्ति) तक नाड़ी वृत्त पर आ जाता है। तुलाराशि के प्रारम्भ (23 सितम्बर) को क्रान्ति शून्य होकर सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध

में प्रवेश कर जाता है। उत्तर की भांति सायन-तुला-वृश्चिक एवं धनुराशि में (23 सितबर से 21 दिसम्बर तक) सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति अधिकतम 23^0/27। तक होती है। सायन मकर प्रवेश से सायन कन्यान्त तक (22 दिसम्बर से 20 मार्च तक) दक्षिणाक्रान्ति घटती रहती है। सायन तुलाप्रवेश (21 मार्च) को क्रान्ति पुनः शून्य हो जाती है। पूरे वर्ष यह क्रम चलता ही रहता है -

चित्र सं.- 4

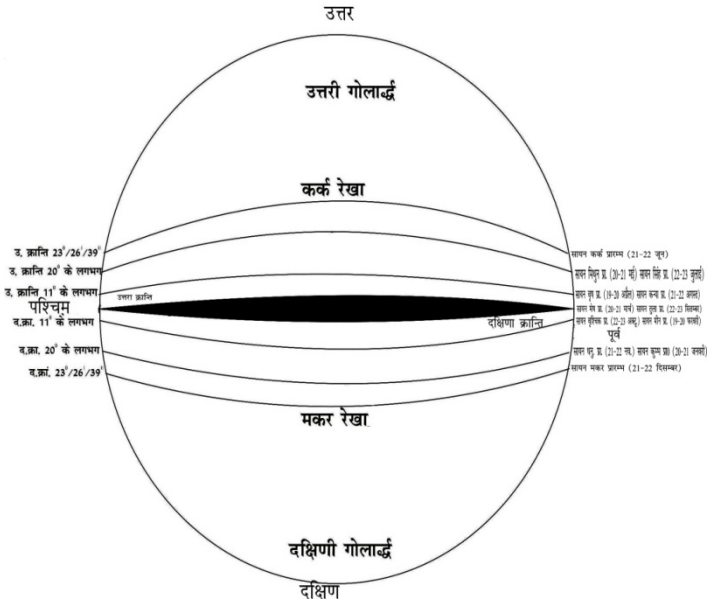

आप चित्र के माध्यम से क्रान्ति का बोध भली प्रकार कर सकते हैं। खगोल के मध्य पूर्व-पश्चिम में गया हुआ विषुवद् वृत्त आकाश मण्डल को उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्ध के रूप में दो भागों में विभाजित करता है। नाडीवृत्त (विषुवद् वृत्त) पर सूर्य प्रतिवर्ष सायन मेषएवं सायनतुलाराशि प्रवेश के समय (21-22मार्च एवं 22-23 सितम्बर को) आता है। नाडीवृत्त पर सूर्य की क्रान्ति 0 शून्य रहती है। 21 मार्च से प्रतिदिन उत्तरदिशा की ओर अग्रसर होता हुआ सूर्य विषुवद वृत्त से जितना हटता जायगा, उतने ही अंश-कला उत्तरा क्रान्ति में वृद्धि होती जायगी। 21 जून को यह सर्वाधिक दूरी विषुवद् से बनाता है। 21 जून को कर्क रेखा को स्पर्श करते हुए सूर्य की परम क्रान्ति 23^0/26/39 होती है। (प्राचीन काल में यह परम क्रान्ति 24^0 अंश मानी गई थी) ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सभी मानकग्रन्थों में परमक्रान्ति के 24^0 होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु आजकल वेधद्वारा सूर्य की परमक्रान्ति

23^0/26/39 उपलब्ध है। सूर्य 21 जून से नाडी वृत्त की ओर लौटना प्रारम्भ करते हुए 22-23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त पर आने के साथ क्रान्ति 0 शून्य हो जाती है। 23 सितम्बर से सूर्य दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके दक्षिण दिशा मे अग्रसर होता हुआ 21 दिसम्बर के लगभग मकर रेखा को स्पर्श करता है। तब भी सूर्य की परमाधिक दक्षिणाक्रान्ति 23^0/26/39 होती है। (प्राचीनकाल में यह भी 24^0 अंश थी) 22 दिसम्बर से सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति में ह्रास प्रारम्भ होता है, 21 मार्च को नाडीवृत्त पर सूर्य के स्पर्श करने के कारण क्रान्ति पुनः 0 अंश पर आजाती है। यह क्रम पूरे वर्ष इसी तरह चलता रहता है।

संक्षेप में 21 मार्च से 21 जून तक क्रमशः 0 से 23^0/26/39 तक उत्तरा क्रान्ति उपचीयमान होती है। 21 जून को कर्क रेखा से सूर्य दक्षिणामुखी होकर अपचीयमान उत्तरा क्रान्ति के साथ 23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त के स्पर्श करते ही 0 शून्य क्रान्ति पर आ जाता है। 23 सितम्बर से दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ 21 दिसम्बर तक मकर रेखा को स्पर्श करते ही परमक्रान्ति 23^0/26/39 प्राप्त कर लेता है। मकर रेखा को स्पर्श करने के पश्चात् सूर्य उत्तराभिमुखी होकर अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ पुनः 21 मार्च को नाडी वृत्त पर आ जाता है।

- 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य उत्तगोल में रहता है।
- 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य दक्षिण गोल में रहता है।
- 21 मार्च से 20 जून तक उपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 21 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 23 सितम्बर से 21 दिसम्बर तक उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।
- 22 दिसम्बर से 20 मार्च तक अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

सूर्य 21 जून से दक्षिणायन (कर्क रेखा से लौटने पर) एवं 22 दिसम्बर से (मकर रेखा से लौटने पर) उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है। गणितीय प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्म क्रान्ति का साधन त्रिकोणमिति की सहायता से किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ - 6 जुलाई 2012 शुक्रवार को विद्यापीठ पंचांग में स्पष्ट सूर्य = $2/20^0$/20/20 तथा केतकी अयनांश = 24^0/00/53 है। स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ने पर सायन सूर्य = राश्यादि सूर्य $2/20^0$/20/20

अंशादि $+\underline{24^0/00/53}$

3-14-21-13 रा. सायनसूर्य

राशि संख्या को 30 से गुणा कर अंशादि सायन सूर्य = 104^0/21/13 सुविधा की दृष्टि से अंशादि को दशमलव में परिणत करने पर = 104^0, 3537 = अंशादि सायन सूर्य हुआ। साइन्टिपिफक कैलुकेलेटर (संगणक) की सहायता से, सूक्ष्मक्रान्ति का साधन अनुपात द्वारा किया जाता है- 90^0 अंशकी ज्या अर्थात् त्रिज्या (नोट-यहाँ पर त्रिज्या का मान 1 होता है) में परमक्रान्तिज्या (ज्या 23.4442) प्राप्त होती है। तो अभीष्ट सायन सूर्य की ज्या (ज्या 104^0.3537) में क्या?

$$= \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{सायनसूर्यभुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} = \text{ज्या (23.4442)} \times \text{ज्या (104.3537)}}{1}$$

= .385436219 = अभीष्ट क्रान्तिज्या। कैलकुलेटर द्वारा चाप लेने पर = 220.6708 = 220 अंश 40। कला अभीष्ट क्रान्ति। क्रान्तिसारिणी में 6 जुलाई को क्रान्ति 260/40 लिखी हुई है। त्रिकोणमिति से परिचित लोग बगैर सारिणी के कैलकुलेटर (संगणक) की सहायता से सूक्ष्म क्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यलोग क्रान्तिसारिणी में अभीष्ट दिनाङ्क की क्रान्ति लेकर आगे चर साधन की प्रक्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। जैसा कि आप जान चुके हैं क्षितिज के ऊपर स्थित सूर्यादि ग्रहों के बिम्बो का दर्शन होता है। क्षितिज
के नीचे स्थित बिम्बों का दर्शन नहीं होता। प्रत्येक स्थान का क्षितिज भिन्न-भिन्न होने के कारण एक समय पर सभी बिम्ब सभी स्थानों पर दिखलाई नहीं दे सकते हैं। जितने समय सूर्य का दर्शन होता रहे उतने समय का दिन, सूर्य के दिखलाई न देने पर रात्रि की परिभाषा भी आपलोग जानते ही हैं। किसी

क्रान्ति- सारिणी

दिनाङ्क → / माह ↓	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31
जनवरी +	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18	17	17
	4	59	54	48	42	36	28	21	13	4	16	47	37	27	16	05	54	12	30	18	5	51	38	24	10	55	40	24	9	53	36
फरवरी +	17	17	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	10	9	9	9	8	8	07	x	x
	20	02	45	28	10	52	33	15	56	37	17	57	37	17	57	36	16	55	34	13	51	29	07	45	23	1	39	16	53	x	x
मार्च +	07	07	6	6	5	5	5	4	4	4	3	3	2	2	2	1	1	0	0	+0	0	0	1	1	1	2	2	3	3	3	4
	30	07	45	22	58	35	12	49	25	02	38	14	51	27	03	40	16	52	29	05	−19	43	06	30	54	17	41	04	27	51	14
अप्रैल -	4	5	5	5	6	6	6	7	7	8	8	8	9	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14	14	14	x
	37	00	23	46	09	32	55	17	39	02	24	45	07	29	51	12	33	54	15	35	56	16	36	56	16	35	54	13	32	50	x
मई -	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	21	21	21
	09	27	44	03	19	36	52	09	25	41	56	12	27	41	55	09	23	36	49	02	14	26	38	49	00	10	20	30	39	48	57
जून -	22	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	x
	05	13	21	28	34	41	47	52	57	02	06	10	14	17	19	22	23	25	26	26	26	26	26	25	23	21	19	16	13	10	x
जुलाई -	23	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18
	06	02	57	51	46	40	34	27	20	13	05	57	48	39	30	20	10	59	49	38	26	14	02	49	36	23	10	15	42	28	12
अगस्त -	17	17	17	17	16	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	9	9	9	8	8
	58	43	27	11	55	38	22	05	48	30	12	54	36	18	59	40	21	02	42	23	03	42	22	02	41	20	59	38	17	55	34
सितम्बर -	8	7	7	7	6	6	6	5	4	4	4	4	3	2	2	2	1	1	1	0	0	0	0	0	0	1	1	2	2	2	x
	12	50	28	06	44	22	00	37	14	52	29	06	43	20	57	34	11	47	4	01	37	−14	+09	33	56	19	43	06	29	53	x
अक्टूबर +	3	3	4	4	4	5	5	5	6	6	7	7	7	8	8	8	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14
	16	39	02	26	49	12	35	58	20	43	06	28	51	13	35	59	19	42	03	25	46	07	28	49	10	30	51	11	31	51	10
नवम्बर +	14	14	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	x
	30	49	08	26	45	03	20	38	55	12	29	45	01	17	32	47	02	16	30	44	58	11	23	35	47	59	10	20	31	41	x
दिसम्बर +	21	21	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23
	50	59	08	16	24	31	38	44	50	56	01	06	10	14	17	20	22	24	25	26	26	26	26	25	24	22	19	17	13	10	05

नोट :- सूर्य की क्रान्ति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक उत्तरा (-) तथा 23 सितम्बर से 20 मार्च तक दक्षिणा (+) होती है। क्रान्ति अंश एवं कला में है।

भी वृत्त (गोल) के आधे भाग में 180^0 अंश अथवा 30 घटी अर्थात् 12 घण्टे होते हैं। चित्र के माध्यम से स्पष्ट दिखलाई दे रहा है, कि विषुवद् वृत्त पर सूर्य रहने की स्थिति में (21 मार्च और 23 सितम्बर को) उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज अथवा दक्षिणी अक्षांश वालों के क्षितिज में ठीक आधे भाग में अर्थात् 12 घण्टे सूर्य के दर्शन होने से 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। निरक्षदेशीय क्षितिज में प्रतिदिन 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। उत्तर एवं दक्षिणी क्षितिज के अन्दर उससे या कम समय सूर्य के दिखलाई देने पर दिनरात्रिमान में ह्रास वृद्धि दिखलाई देगी। 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में रहने की स्थिति में चित्र में उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज में निरक्ष क्षितिज के आधेभाग + चर + चर। तुल्य सूर्य दर्शन होने से दिनमान में वृद्धि तथा रात्रिमान में ह्रास स्पष्ट दिखलाई दे रहा है। उसी समय (21 मार्च से 22 सितबर) दक्षिणक्षितिज वृत्त के अन्तर्गत द द। भाग में ही सूर्य का दक्षिण अक्षांश वालों को दर्शन हो रहा है। जो कि आधेवृत्त से बहुत कम है। अतः सिद्ध हुआ कि सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर दक्षिण अक्षांश वाले स्थानों पर दिन का मान 12 घण्टे से न्यून एव रात्रिमान 12 घण्टे से अधिक होता है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में (23 सितम्बर से 21 मार्च) सूर्य के जाने पर दक्षिणी अक्षांश पर चित्र में नीचे 12 घंटे +चर + चर। अर्थात् 12 घण्टे से अधिक समय का दिन एवं 12 घण्टे से कम समय की रात्रि स्पष्ट दिखलाई दे रही है।

3.4 परमक्रान्ति विवेचन

परमक्रान्ति को समझने के पूर्व क्रान्ति का ज्ञान आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि क्रान्ति क्या है? तो गोलीय दृष्टिकोण से ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त में नाड़ी और क्रान्तिमण्डल के दक्षिणोत्तर अन्तर का नाम क्रान्ति है। अथवा सामान्य भाषा में सूर्य नाड़ी वृत्त से कितना अंश उत्तर या दक्षिण में स्थित है। इसका नाम क्रान्ति है। कहा भी गया है –

नाड़ीवृत्ताद् ग्रहं यावत् क्रान्ति सैवाऽपम स्मृत:।।

क्रान्ति को ही 'अपम' भी कहा जाता है। अत: यहाँ अपम का अर्थ क्रान्ति से है। यही क्रान्ति नाड़ी वृत्त से क्रान्तिवृत्त में जिस दिशा में (दक्षिणोत्तर) जहाँ तक ग्रह गया हो। इस प्रकार नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त के सम्पात स्थान में उनका अन्तर के अभाव से क्रान्ति का भी अभाव होता है। वही परमान्तर में परमक्रान्ति के नाम से जाना जाता है। परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला तुल्य माना गया है। इसी के आधार पर इष्टक्रान्ति का भी ज्ञान किया जाता है। सूर्यसिद्धान्त में परमक्रान्तिज्या के मान से इष्टक्रान्ति साधन इस प्रकार कहा गया है –

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दव:।

तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरूच्यते॥

अर्थात् परमक्रान्तिज्या का मान सप्तरन्ध्रगुणेन्दव: (१३९७) कला है। इसको ज्या से गुणा करके, फल को त्रिज्या से भाग देने पर जो आए वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्ति का मान होता है। वस्तुत: यहाँ यह बतलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के भुजों और कोणों में परस्पर क्या सम्बन्ध होता है। परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला बतलाया गया है, जिससे जान पड़ता है कि परमक्रान्ति का मान २४ अंश है, क्योंकि २४ अंश का ज्या मान ही १३९७ कला होता है। यद्यपि शुद्ध गणना से वह २३ अंश ५८ कला ३१ विकला की ज्या है।

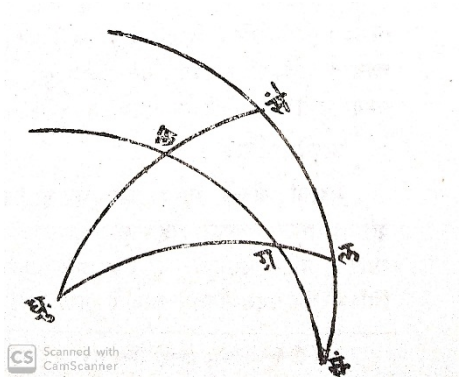

आप उपर दिए गए क्षेत्र को भी देखकर क्रान्ति को समझ सकते हैं। क्षेत्र में –

सं= नाड़ीक्रान्तिमण्डल का सम्पात बिन्दु 'गोलसन्धि' है।

ध्रु= ध्रुवस्थान

ध्रुग्रल= ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त

ध्रु असं = अयनप्रोतवृत्त नाड़ीक्रान्तिवृत्त का परमान्तर

असं= क्रान्तिवृत्त में नवत्यंशा = ९० अंश स सं = नाड़ीवृत्त में ९० अंश

अस = परमक्रान्त्यंश = २४ अंश। १

ग्रसं = इष्टग्रहभुजांश, लसं = विषुवांश

ग्रल= इष्टक्रान्ति:। २

यहाँ १, एवं २समीकरण से ज्याक्षेत्र की साजात्यता से

$$\frac{\text{ज्या असं} \times \text{ज्या ग्र सं}}{\text{ज्या अ सं}} = \frac{\text{ज्या } २४^{\circ} \times \text{ज्या ग्र भु}}{\text{त्रिज्या}}$$

=इष्टक्रान्तिज्या

=ज्या ग्रल इसकी चाप इष्टक्रान्ति होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1.नाड़ीवृत्त से सूर्य का दक्षिणोत्तर अन्तर क्या कहलाता है।

क. क्रान्ति ख. शर ग. विक्षेप घ. परमाक्रान्ति

2. सायन मेष राशि में सूर्य का प्रवेश कब होता है।

क. २२ मार्च ख. २१ मार्च ग. २३ सितम्बर घ. कोई नहीं

3. नाड़ीवृत्त पर क्रान्ति शून्य कब रहती है।

क. २२ सितम्बर ख. २३ सितम्बर ग. २१ मार्च घ. १४ जनवरी

4. परमक्रान्ति का मान कितना होता है।

क. २४ अंश ख. २२ अंश ग. १३९७ कला घ. कोई नहीं

5. क्रान्ति से किसका सम्बन्ध है।

क. चन्द्र का ख. सूर्य का ग. भौम का घ. बुध का

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर

शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

क्रान्ति– नाड़ीवृत्त से सूर्य का दक्षिणोत्तर अन्तर का नाम क्रान्ति है।

परमक्रान्ति– क्रान्ति की परमावस्था का नाम परमक्रान्ति है। इसका मान २४ अंश होता है।

नाड़ीवृत्त– ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम नाड़ीवृत्त है।

क्रान्तिवृत्त– सूर्य का भ्रमण पथ का नाम क्रान्विृत्त है।

भूमध्येरेखा– विषुवद् रेखा को ही भूमध्येरेखा कहते है।

उत्तर गोल – सूर्य का मेषादि छ: राशियों में स्थिति को उत्तरगोल के नाम से जानते है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.क 2. ख 3. ग 4. क 5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा।

(ख) सूर्यसिद्धान्त– टिकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – टिका– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) सूर्यसिद्धान्त– महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

ग्रहलाघवम्– टिका– प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

केतकीग्रहगणितम्– मूल लेखक - आचार्य वेंकट

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्रान्ति से क्या तात्पर्य है। स्पष्ट कीजिये।
2. क्रान्ति साधन कीजिये।
3. परमक्रान्ति से आप क्या समझते है।
4. परमक्रान्ति का साधन कीजिये।
5. गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं परमक्रान्ति की उपयोगिता बतलाइये?

इकाई – 4 अक्षक्षेत्र परिचय

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अक्षक्षेत्र परिचय

4.4 सारांश

4.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-350 से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है- अक्षक्षेत्र परिचय। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने क्रांति एवं परमक्रांति का अध्ययन कर लिया है। अब आप गोल से संबंधित अक्षक्षेत्र के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

अक्षक्षेत्र का संबंध अक्षांश से है। इसमें एक कोण समकोण होता है। गोलीयघनक्षेत्र में आठ अक्षक्षेत्रों का निर्माण होता है।

आइए हम सभी अक्षक्षेत्र के बारे में अध्ययन करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि -

अक्षक्षेत्र किसे कहते है।
अक्षक्षेत्र में कितने क्षेत्रों का निर्माण होता है।
गोल में अक्षक्षेत्र की क्या आवश्यकता है।
अक्षक्षेत्र का गणितीय स्वरूप क्या है।

4.3 अक्षक्षेत्र परिचय

अक्षांश से संबंधित क्षेत्र को अक्षक्षेत्र कहते है। आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में अक्षक्षेत्र के बारे में बतलाते हुए कहा है कि –

भुजोऽक्षभा कोटिरिनांगुलो ना कर्णोऽक्षकर्ण: खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां विद्येव मानार्थयश: सुखानाम्।।
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभज्या।
कुज्या भुज: कोटिरपक्रमज्या कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम्।।
तथैव कोटि: समवृत्तशङ्कुरग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्ण: ।
भुजोऽपमज्या समना च कर्ण: कुज्योनिता तद्धृतिरत्र कोटि: ||
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरुद्धत्तना दो: श्रवणोऽपमज्या ।
उद्धत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवण: क्षितिज्या ॥

खण्डं यदूध्वं समवृत्तशङ्कोर्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णौ।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत् ||

अर्थात् ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से दृष्टा जैसे-जैसे उत्तर की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव ऊँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषुवन्मण्डल नीचा दिखाई देता। है। विषुवन्मडल की तिर्यक् स्थिति के कारण उसके (समानान्तर) आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अतःसाक्ष देश खगोल वलन तथा तिरछे भगोल वलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र संज्ञा है। इन क्षेत्रों की उपयोगिता आचार्य कहते हैं।

(१) अक्षभा अर्थात पलभा भुज, १२ अंगुलात्मक शंकु कोटि तथा अक्षर्ण कर्ण से मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है। यह क्षेत्र ज्ञान के समान, मूलभूत क्षेत्र है, जिससे (ज्ञान से) संसार की सभी मान, अर्थ, यश तथा सुख आदि मूलभूत अच्छाईयाँ प्राप्त होती है।

(२) दक्षिणोत्तर मण्डल और विषुवद् वृत्त के संपात से नीचे अवलम्बित क्षितिज पर्यन्त सूत्र वहाँ कोटि है। लम्ब मूल तथा भूमध्य का अंतर जो अक्षज्या है वह भुज है। भूमध्य से लम्ब पर अग्रगामि सूत्र त्रिज्या है।वह कर्ण है। यह भी एक अक्षक्षेत्र बनता है।

(३) इष्ट अहोरात्र वृत्त जहाँ क्षितिज पर लगता है उसका पूर्व स्वस्तिक सेअन्तर अग्राचापांश होता है जिसकी ज्या अग्रज्या होती है। क्षितिज परअग्रा के दोनों अग्र बिंदु से निबद्ध सूत्र उदयास्त सूत्र होता है। अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र से जो अंतर है वहक्रांतिज्या है, वह यहाँ कोटि है। अग्रा कर्ण है। उसका अग्रा से अंतर कुज्या है वह भुज है। इस प्रकार यह तीसरा अक्षक्षेत्र है।

(४) अहोरात्रवृत्त और सममंडल के संपात से नीचे लंब समवृत्तशंकु है वह कोटी है। अग्रा भुज तथा अहोरात्र वृत्त में ज्याखण्ड तद्धृति कर्ण है। इस प्रकार यह चौथा अक्षक्षेत्र है।

(५) कुज्या को तद्धृति में घटाने से अहोरात्र वृत्त में ज्यार्ध कोटि है उन्मण्डल में क्रांतिज्या है वह भुज है। समवृत्त में समशंकु कर्ण है। इस प्रकार यह पांचवाँ अक्षक्षेत्र है।

(६) अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात से अवलंब उन्मण्डल शंकु भुज है। उन्मण्डल में क्रांतिज्या कर्ण है। उन्मंण्डल शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र का अंतर जो अग्रादि का खंड है वह कोटि है। यह छठा अक्षक्षेत्र है।

(७) उन्मंडल शंकु कोटि है। शंकूमूल तथा उदयास्त सूत्र का अन्तर अग्रा खण्ड भुज है तथा कोटि भुज, अग्रा का अंतर सूत्र जो है वह कर्ण है। इस प्रकार यह सातवाँ अक्षक्षेत्र है।

(८) उन्मंडल शंकु को समशंकु में से घटाने से समशंकु का उर्ध्व खंड कोटि है। तद्धृति में कुज्या घटाने से तद्धृति का उर्ध्व खंड कर्ण है तथा अग्रादि खंड भुज है। यह आठवाँ अक्षक्षेत्र है। इस प्रकार ये आठ अक्षक्षेत्र कहे हैं। इनसे अतिरिक्त भी अन्य बहुत अक्षक्षेत्र बनते हैं। इन अक्ष क्षेत्रों में एक कोण अक्षांश तुल्य, दूसरा अक्षांश कोटि लंबाश तुल्य तथा तीसरा समकोण (६०° अंश) होता है। अक्षांश तुल्य कोण के सामने की भुजा भुज, अक्षांश कोटि तुल्य कोण के सामने की भुजाकोटी तथा ६०° समकोण के सामने की भुजा कर्ण होती है। इन आठ अक्ष क्षेत्रों के अतिरिक्त अहोरात्र वृत्त, विषुतवृत्त के अन्य क्षितिजवृत्त, सममण्डल, उन्मंडल तथा क्रांतिवृत्त के साथ संपात से अन्य अक्ष क्षेत्र भी याम्योत्तर वृत्त, बनते हैं। ये सभी वृत्त क्षेत्र अक्ष, अक्षकोटि (लंबांश) तथा समकोण में परस्पर संपात करते हैं।

भास्कराचार्य जी ने आठों अक्ष क्षेत्र निम्नलिखित प्रकार से बताया है –

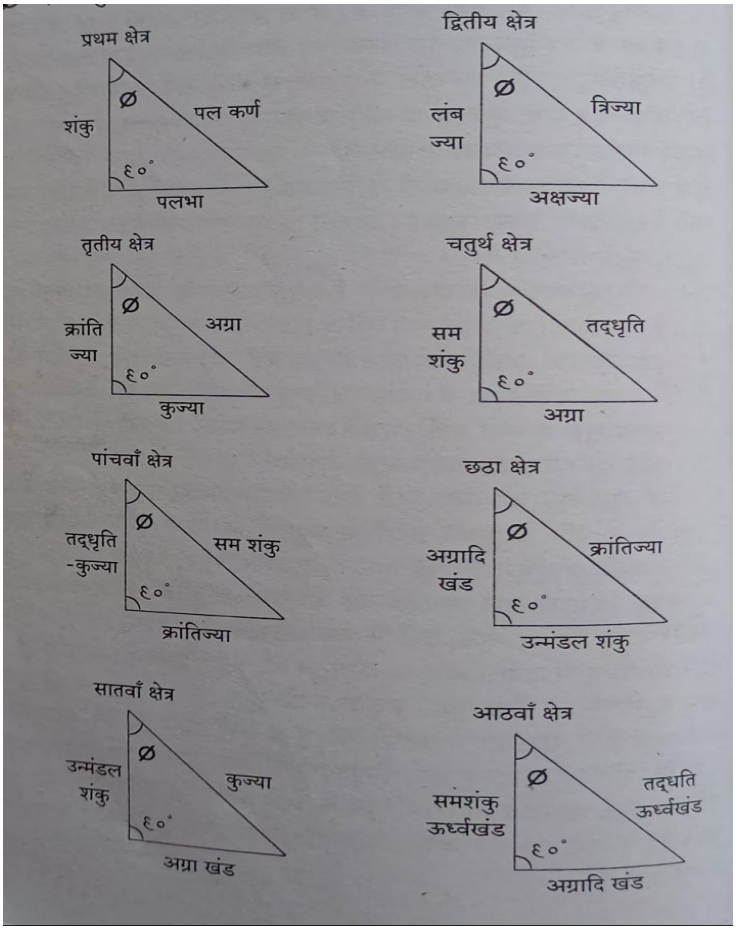

आधुनिक ज्या (Sine), कोज्या (Cosine) तथा स्पर्शज्या (Tangent) की परिभाषानुसार समतल त्रिभुज में -

ज्या = $\frac{\text{लंब}}{\text{कर्ण}}$

कोज्या = $\frac{\text{आधार}}{\text{कर्ण}}$

स्पर्शज्या = लम्ब / आधार

यहाँ अक्ष क्षेत्रों के भुज = लंब तथा कोटि = आधार है। इनके आधारपर इन सभी त्रिभुज अक्ष क्षेत्रों में ये अनुपात ज्ञात करके यहाँ बताये जा रहेहैं। इस प्रकार सभी त्रिभुजों से ज्ञात अक्षज्या का मान तुल्य होगा, लंबज्या(कोज्या अक्षज्या) का मान समान होगा तथा इसी प्रकार स्पर्शज्या का मान समान होगा। आचार्य ने इस त्रिप्रश्नाधिकार में जो भी अनुपात करके सूत्र बनायेहैं वे सभी इनके द्वारा तथा यहाँ संलग्न गोचचित्र (१) तथा (२) द्वारा प्राप्त होजाते हैं।

ज्या अक्षांश = $\frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}}$

लंबज्या = $\frac{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}}$

अक्षांश स्प.ज्या = $\frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}$

अक्षक्षेत्र - प्रथम-

अक्षांश ज्या = $\frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$

लंब ज्या = $\frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$

अक्षांश स्प.ज्या = $\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$

द्वितीय-

अक्षज्या =अक्षज्या, लंबज्या = लंबज्या, अक्षांश स्प.ज्या = अक्षांशस्प.ज्या

तृतीय -

अक्षज्या = $\frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}}$

लंबज्या = $\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{अग्रा}}$

अक्षांश स्प.ज्या = $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$

चतुर्थ –

अक्षज्या = अग्रा/ तदृधति , लंबज्या = समशंकु/ तद्धृति , अक्षांश स्प.ज्या = अग्रा / समशंकु

पंचम –

अक्षज्या = क्रांतिज्या / समशंकु , लंबज्या = तधृति –कुज्या/ क्रांतिज्या,अक्षांश स्प.ज्या = क्रांतिज्या/ तदधृति – कुज्या

षष्ठ -

अक्षज्या = उन्मंडल शंकु / क्रांतिज्या, लंबज्या = अग्राखण्ड/ क्रांतिज्या, अक्षांश स्प.ज्या = उन्मंडल शंकु/ अग्रादि खण्ड

सप्तम –

अक्षज्या = अग्रा खंड / कुज्या, लंबजया = उन्मंडल शंकु / कुज्या , अक्षांश स्प.ज्या = अग्रा खंड /उन्मंडल शंकु।

अष्टम –

अक्षज्या = अग्रादि खंड / तद्धृति उर्ध्वखंड, लंबज्या = समशंकु उर्ध्वखंड/ तद्धृति उर्ध्वखंड
अक्षांश स्प.ज्या = अग्रा खंड / समशंकु उर्ध्वखंड।

इन सभी क्षेत्रों में अक्षज्या, लंबज्या तथा स्प.ज्या के मान सभी अक्ष क्षेत्रों में तुल्य हैं।

बोधप्रश्न-

1. ध्रुवोन्नति क्या होता है।
2. जहां का अक्षांश शून्य होता है, उसे क्या कहते है।
3. अक्षभा को क्या कहते है।
4. शंकु का मान होता है।
5. अहोरात्र वृत्त तथा उन्मंडल के संपात का पूर्वापर सूत्र से जो अंतर हैवह क्या कहलाता है।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि अक्षक्षेत्र का अक्षांश से है। तथा अक्षक्षेत्रों की सभी क्षेत्रों में अक्षज्या, लंबज्या तथा स्प.ज्या के मान तुल्यहोते है। ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से दृष्टा जैसे-जैसे उत्तर की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव ऊँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषुवन्मण्डल नीचा दिखाई देता। है। विषुवन्मडल की तिर्यक् स्थिति के कारण उसके (समानान्तर) आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अतःसाक्ष देश खगोल वलन तथा तिरछे भगोल वलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र संज्ञा है।

4.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अक्षांश
2. निरक्ष देश
3. पलभा
4. 12 अंगुल
5. क्रांतिज्या

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

अक्षांश – अक्ष संबंधित अंश

पलभा – 12 अंगुल शंकु की छाया

अहोरात्र वृत्त – द्युज्याचापांश से 90 अंश की त्रिज्या से बना वृत्त

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सिद्धान्तशिरोमणि

सिद्धान्ततत्वविवेक

सूर्यसिद्धान्त

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अक्षक्षेत्र से आप क्या समझते है।
2. अक्षक्षेत्र को क्षेत्र द्वारा प्रदर्शित करते हुए स्पष्ट कीजिए।

खण्ड-2

ज्या क्षेत्र, वेध तथा यंत्रादि विचार

इकाई – 1 पंचज्या विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पंचज्या विचार

1.4 द्युज्या, कुज्या एवं त्रिज्या आदि की परिभाषा

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N) -350 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचज्या विचार। इससे पूर्व आपने गोल में विविध वृत्तादि की परिभाषाओं के साथ-साथ क्रान्ति एवं परमक्रान्ति से जुड़े कई विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप गोल से ही जुड़े विषय के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या आदि सभी विषय 'गोल' के ही महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से 'गोल शास्त्र' में और निपुणता आयेगी।

अत:आइए इस इकाई में हम लोग द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, आदि के बारे में तथा उसके प्रयोजन को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- द्युज्या, कुज्या तथा त्रिज्या को परिभाषित कर सकेंगे।
- त्रिज्या क्या है। यह बता सकेंगे।
- गोल ज्ञान में और निपुण हो सकेंगे।

1.3 पंचज्या परिचय

गोल में द्युज्या, त्रिज्या, कुज्या, चरज्या एवं भुजज्या को 'पंचज्या' कहा जाता है।

जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रांति साधन करने के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग तुल्य (अर्थात् सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय से पूर्व अथवा पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं) लेते हैं। सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३६७ से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप क्रांति होती है। त्रिज्यावर्ग (=११८१६८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घटा कर शेष मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इसकी दिशा क्रांति ज्या की दिशा के अनुरूप होती है। का क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग देने से क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके घुज्या से भाग देने से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) होता है।

इस प्रकार से आचार्य भास्कराचार्य ने पंचज्या साधन करते हुए सिद्धान्तशिरोमणि में कहा भी है कि –

युक्तायनांशादपमः प्रसाध्यः।
कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।।
जिनांशमौर्व्या गुणितार्कदोर्ज्या।
त्रिज्योद्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम्।।
त्रिज्याकृतेः प्रोह्यपदं द्युजीवा
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम्।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या
तदद्वादशांशो भवति क्षितिज्या।।
सा त्रिज्यकाघ्नी विहृता द्युमौर्व्या चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात्।।

विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर क्रांति होता है। इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव होता है। संपात से तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश तुल्य होती है। अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। राशि का उदयास्त मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः सायन अंश युक्त ग्रह की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज्या तुल्य भुजज्या में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट ज्या में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद् वृत्त में तिर्यगरूप में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर का मूल अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कुज्या के लिए द्वादश अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या कोटि में कितनी होगी ? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र वत्त की ज्या रूप होती है। इसका धनु बनाने के लिए इसको त्रिज्या वृत्त में परिणित करते हैं। यदि ज्याव्यासार्ध में इतनी कुज्या होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी होगी ? प्राप्तफल चरज्या होती है। इसका धनु चर होता है। अतः आचार्योक्त कुज्या उपपन्न हुआ।

विशेष - ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है । यथा –

"जिनभागज्यागुणिता सूर्यज्या व्यासदलहता लब्धम्। इष्टापक्रमजीवाविषुवदुदग्दक्षिण सवितुः ॥५५॥
इष्टापक्रम वर्ग त्रिज्यावर्गाद्विशोध्यशेषपदम् । विषुवदुदग्दक्षिणतः स्वाहोरात्रार्धविषकम्भः ॥ ५६ ॥

क्रान्तिज्या विषुवच्छायया गुणा द्वादशोद्धृता क्षितिजा ।स्वाहोरात्रेऽनष्टास्वाहोरात्रार्धेनव्यासार्धेनाहता भक्ता ॥ ५७॥

क्षयवृद्धिज्याधनुश्चरप्राणाः ।"ते षड्हृता विनाडयो विनाडिका नाडिकाः षष्ट्या ॥ ५८ ॥"

सूर्यसिद्धान्त में द्युज्या का आनयन कुछ भिन्न प्रकार से बताया है, क्रांति से ज्या तथा उत्क्रमज्या का साधन करके त्रिज्या में से उत्क्रमज्या को घटाने से अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध द्युज्या प्राप्त होता है। शेष का आनयन आचार्योक्त प्रकार ही से है। यथा स्पष्टाधिकार-

"परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः (१३६७)।
तदगुणा ज्या त्रिजीवाप्ता (३४३८) तच्चापं क्रांतिरुच्यते ॥२८॥
क्रांतिज्या विषुवद्धाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ।
त्रिज्यागुणाऽहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजा ऽसवः॥६१॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय अध्याय ४ में क्रांतिसाधन के लिएआचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने १३६७÷३४३८ = यथा- "त्रयोदशहता जीवा त्रिस्फुटस्य विवस्वतः । १३ ले लिया है। ३२ द्वात्रिंशता हृता क्रांति परिशेषस्तु पूर्ववत्॥२५॥ तथा अध्याय ३ में क्रांतिज्या, द्युज्या, अक्षज्या तथा चर साधन आचार्योक्त ही बताया है। यथा-

"इष्टज्यां मुनिरन्ध्र पुष्कर शशि क्षुण्णां सदा संहरेद्
व्यासार्धेन भवेदपक्रमगुणस्तात्कालिकस्तत्कृतिम् ।
विषकम्भार्धकृतेर्विशोध्य च पदं द्युव्यासखण्डं विदुः
स्वेष्टक्रान्तिहतं पलं प्रविभजेल्लम्बेन जीवा क्षितेः॥६॥

व्यासखण्डगुणितं क्षितेर्गुणं संहरेद् दिवसजीवया पुनः । • काष्ठितं च यदवाप्तमत्र तु प्राच्यते चरदलं सतां वरैः ॥७॥ " आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा- "जीवा क्रान्तिज्याघ्नी गज्या भक्ताऽपमज्या स्यात ॥११॥ रव्यपमज्या पलभाघातः परभाजितः कुज्या । क्रांतिज्यावर्गोनाद्गज्यावर्गात् पदं द्युज्या ॥१७॥ द्युज्या भक्तः कुज्या गज्याघातश्चरज्या स्यात् ।तच्चापकलाः प्राणास्तैर्निघ्नी मध्यमाभुक्तिः ||१८||" वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा- क्रांतिज्या आनयन-1"क्रांन्तिः परा जिनांशाः पराक्रमज्या जिनांशकज्योक्ता । तद्गुणितऽर्कभुजज्या´ त्रिगुणहृदिष्टापमज्या स्यात्॥१॥

अध्याय ४ में द्युज्या आनयन- "क्रांतिज्यावर्गोनास्त्रिज्यावर्गात्पदं स्यात्।"१॥ में अध्याय ५ कुज्या आनयन-"विषुवच्छाया गुणिता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृता वा (कुज्या) स्यात्॥१॥" अध्याय ८ में चरज्या आनयन--"कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता चरार्धजीवा स्यात ॥ १॥"इस प्रकार वटेश्वर ने अनेकों विधियों से इन पांच ज्याओं तथा अग्रादि को साधन करने के लिए अलग-अलग पूरे-पूरे अध्याय दिये हैं।

अथ प्रकारान्तरेण चरानयनमाह-

स्वदेशजस्तच्चरखण्डकैर्वा लघुज्यकावद्रविदोस्त्रिभागात् ॥४६॥

मेषादिराशित्रितयस्य यानि चराण्यधोऽधः परिशोधितानि ।

तानि स्वदेशे चरखण्डकानि दिड्नागसत्र्यंशगुणैः १०१८ | विनिघ्नी ॥५०॥

पलप्रभा तोयपलात्मकानि स्थूलानि वा स्युश्चरखण्डकानि ।

स्थूलं चरं चाम्बुपलात्मकं तैस्तत्प्राणचापं यदि वापि सूक्ष्मम् ॥५१॥

प्रकारांतर से चर आनयन –

स्वदेश के तीन चर खण्ड ज्ञात करने के लिए लघुज्या प्रकार से सायन रवि के लिए तीन राशियों की ज्या ज्ञात करे, फिर पूर्व श्लोक ४७ ४८ – ४८ द्वारा चर ज्ञात करे। मेषादि तीन राशियों (३०°, ६०, ६०९) के चर को अधो अद्यः स्थापित करके घटाने (द्वितीय में से प्रथम, तृतीय में से द्वितीय) से प्राप्त तीन चर खण्डों को क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ से गुणा करके स्वदेश की पलभा से गुणा करने से वे स्वदेश के स्थूल चर खण्ड होते हैं। चाप में ६ का गुणा देने से प्राण प्राप्त होते हैं जिन की ज्या ज्ञात करे। ये सूक्ष्म होने से वही इनके चाप होते हैं।

उपपत्ति - एक अंगुल पलभा मान कर एक, दो तथा तीन राशियों की पृथक्-पृथक् चर प्राण ज्ञात करके ६ से विभाजित करने से प्राणों को पलात्मक बनाकर उनको अधोअद्यः स्थापित करके घटाने से क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ उत्पन्न होते हैं। एक अंगुल पलभा के चर असु क्रमशः एक राशि के ६०, दो राशि के १०८ तथा तीन राशि के १२८ होते हैं। इनको अद्यो अधः घटाने से क्रमशः ६०, (१०८-६०) = ४८, (१२८-१०८) = २० प्राप्त हुए। इनमें ६ से भाग देने से क्रमशः १०, ८, १०/३ प्राप्त होते हैं। के तुल्य सूर्य का चर इसके स्वक्षितिज तथा उन्मंडल के मध्य भाग के उदय काल होता है। अतः निरक्ष में राशि उदय काल में स्वदेशी चरखण्ड घटाने से स्वदेशी राशि उदयकाल आ जाते हैं। मेष राशि का चर, मेष राशि द्वारा स्वक्षितिज तथा उन्मण्डल से ऊपर उदय होने में लगने वाला

काल है। क्योंकि मेष राशि इन दोनों क्षितिजों पर एक साथ उदित होती है अतः मेष राशि का चर मेष के अंतिम बिंदु का पहले स्वक्षितिज फिर (बाद में) उन्मंडल तक उदय का काल है। इसी प्रकार दो राशियों का चर काल मेष तथा वृषभ दोनों के पूर्ण उदय होने का काल है। अतः इसमें से मेष का उदय काल घटाने से वृषभ राशि का उदय काल आता है। इसी प्रकार तीन राशि का उदयकाल मेष, वृष तथा मिथुन तीनों का पूर्ण उदय होने का चरकाल है। अतः इनमें से प्रथम दो राशि का उदय काल घटाने से मिथुन राशि का उदयकाल शेष रहता है। अतः अनुपात किया कि यदि एक अंगुल पलभा के इतने चर खंड प्राप्त होते हैं तो इष्ट पलभा के कितने होंगे? इस प्रकार इष्ट स्थान की पलभा के चरखंड प्राप्त होते हैं। उनकी ज्या ज्ञात कर लेते हैं और यही (लघु होने से) स्वल्पांतर से उनके धनु होते हैं। अतः आचार्य ने "तत्प्राण चापं यदि वापि वासना के अनुसार करने को कहा है। वहाँ लघुज्या के नो खण्ड है जो तीन सूक्ष्मम्" कहा है। चर खण्डों की ज्या करने के लिए आचार्य ने लघुज्या साधन खण्ड के तुल्य है। अतः तीन-तीन खंड पर एक-एक भुज होगा अतः इस प्रकार तीन खंड होंगे। इसीलिए आचार्य ने "रवि दोस्त्रि भागात् कहा है। कर्त्यादि में चरखंड उपचीयमान होने के कारण चर खंड को धन करते हैं तथा तुलादि में अपने क्षितिज से उन्मंडल नीचे हो से चरखंड को ऋण करते हैं। विशेष- भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है। परन्तु वही बात कुछ अलग ढंग से कही है। "जिना दशघ्ना यमरन्ध्रशालिनो निशाकराष्टौ गुणिताः पलाङ्गुलैः । हताश्चतुर्भि क्रिय-गो-नरान्तजा भवन्ति निः श्वासलवाः चरोद्भवाः ||८||" अर्थात् "चौबीस का दश गुणा (अर्थात् २४०), १६२ तथा ८१ को पलभा अंगुल से गुणा करके ४ से विभक्त करने से मेषादि तीन राशियों के चर असु प्राप्त होते हैं। एक यहाँ आचार्य ने जो २४०, १६२ तथा ८१ गुणांक बताये हैं वेअंगुल पलभा स्थान के मेषादि तीन राशियों के चरासु के चतुर्गुणा हैं। यथा ६०×४, ४८×४, २०×४। इनको २४ से विभक्त करने से ये क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ चरपल होते हैं। यही भास्कराचार्य (द्वि) ने गुणा करने के लिए अंक कहे हैं। यहाँ असु को ६ से विभक्त करने से पल प्राप्त होते हैं। आचार्यने यहाँ श्लोक में ४ से अलग से विभक्त करने को कहा है अतः ६X४=२४का भाग दिया है।पंचसिद्धान्तिका अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा-"विंशति' –'रष्टिः सार्धा' पादोनाः सप्त 'चाजपूर्वाणाम्।विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्च रविनाड्योऽर्धे ॥१०॥"यहाँ २०,१६३ तथा ६ गुणांक कहे हैं जो आचार्योक्त के तुल्य४(स्वल्पांतर) ही हैं। ये १०, ८ तथा ३ ◌े के तुल्य है जो

स्वल्पांतर से १०,, ३ के तुल्य हैं।८ब्रह्मगुप्त ने खंडखाध्याय के अध्याय १ श्लोक २१ में १५६/१६,६५/८ तथा१०/३ च.खं. गुणांक कहे हैं जो स्वल्पांतर से १०,तुल्य ही हैं!

द्युज्या, कुज्या तथा त्रिज्या परिभाषा

गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं। इसका श्लोक भी इस प्रकार है –

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।
द्युज्याचापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।।

'कु' का अर्थ पृथ्वी या क्षितिज से है। तत्सम्बन्धित ज्या कुज्या या क्षितिज्या कहलाती है। ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से ग्रह पर्यन्त द्युज्या चाप है। नाड़ीवृत्त से ग्रहबिम्ब तक ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्तिचाप है। अत: ९० अंश – क्रान्त्यंश = द्युज्याचापांश होता है। ध्रुवबिन्दु से द्युज्याचाप की दूरी पर जो वृत्त बनता है, उसे अहोरात्रवृत्त कहते है।

कुज्या की परिभाषा–

अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है। इसका मूल श्लोक है –

याम्योत्तरात् कुजं यावद् दिनार्धघटिकास्तथा।
कुज्योन्मण्डलयोर्मध्ये चरखण्डं द्युरात्रके।।
तज्ज्या कुज्या चरज्या तु त्रिज्यापरिणता हि सा।।

सूत्र --

$$\frac{\text{कुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{चरज्या}।।$$

आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी जहाँ पंचज्या साधन की बात कही है, वहीं इनका वर्णन किया है –

युतांयनांशादपम: प्रसाध्य:।
कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।।
जिनांशमौर्व्या गुणितार्कदोर्ज्या।
त्रिज्यो द्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम्।।

त्रिज्याकृते: प्रोह्य पदं द्युजीवा।
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम्।।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या।
तद्वद्वादशांशो भवति क्षितिज्या।।
सा त्रिज्यकाघ्नी विहता द्युमौर्व्या चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात्।।

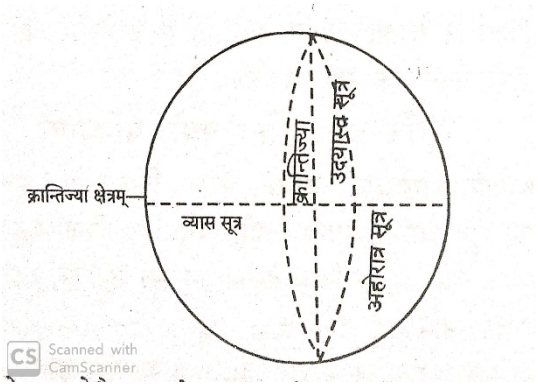

आप उपर के क्षेत्र में भी क्रान्तिज्या को देखकर समझ सकते हैं।

पांच ज्या साधन—

सूर्यप्रभा टीका— जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रां
के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग
सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय
पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं

सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३९७ से गु
से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप
त्रिज्यावर्ग (=११८१९८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घ
मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इ
ज्या की दिशा के अनुरूप होती है।

क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग द
(कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्यु
से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) हो

उपपत्ति— विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर
इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव हो
तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश
अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। रा
मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः साय
की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज
में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इ
होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद
में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर
वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कु
अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्य
होगी? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र

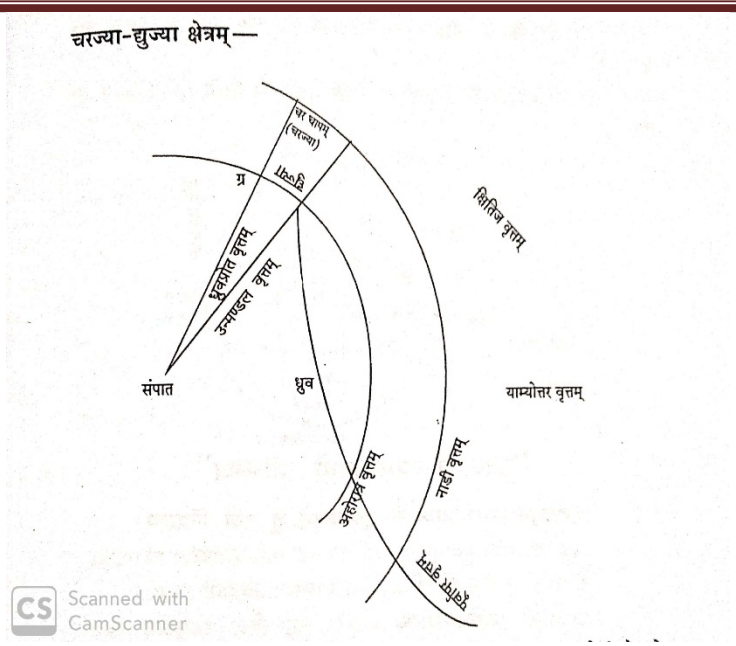

आप उपर के क्षेत्र में चर, चरज्या आदि को देखकर समझ सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न –

1. द्युज्याचापांश की ज्या को क्या कहते हैं।
   क. द्युज्या ख. क्षितिज्या ग. क्रान्तिज्या घ. ज्या
2. कुज्या का अपर नाम क्या है?
   क. क्रान्तिज्या ख. क्षितिज्या ग. द्युज्या घ. ज्या
3. क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर क्या बनता है।
   क. दृक्क्षेप ख. अयन ग. उन्मण्डल घ. क्रान्ति
4. दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे क्या कहते हैं।
   क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल
5. दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे क्याकहते है।
   क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं। इसका श्लोक भी इस प्रकार है –

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।
द्युज्याचापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।।

'कु' का अर्थ पृथ्वी या क्षितिज से है। तत्सम्बन्धित ज्या कुज्या या क्षितिज्या कहलाती है। ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से ग्रह पर्यन्त द्युज्या चाप है। नाड़ीवृत्त से ग्रहबिम्ब तक ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्तिचाप है। अत: ९० अंश – क्रान्त्यंश = द्युज्याचापांश होता है। ध्रुवबिन्दु से द्युज्याचाप की दूरी पर जो वृत्त बनता है, उसे अहोरात्रवृत्त कहते है।

कुज्या की परिभाषा–

अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है। वही त्रिज्यावृत्त में परिणत होने पर चरज्या होती है।

क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **विक्षिभलग्न** कहते हैं। दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सक्षिभ** लग्न कहते है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

द्युज्या– गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं।

कुज्या– अहोरात्रवृत्त में याम्योत्तर से क्षितिज पर्यन्त दिनार्ध (दिनार्धघटी) तथा क्षितिज और उन्मण्डल के बीच अहोरात्रवृत्त में चरखण्ड (चरकाल) होता है। उसकी ज्या चरखण्डज्या को 'कुज्या' कहते है।

पंचज्या – त्रिज्या, द्युज्या, कुज्या, चरज्या आदि को पंचज्या कहते है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.क 2. ख 3. क 4. क 5. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा।

(ख) सूर्यसिद्धान्त– टिकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – टिका– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) सूर्यसिद्धान्त– महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

ग्रहलाघवम्– टिका– प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

केतकीग्रहगणितम्– मूल लेखक - आचार्य वेंकट

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्युज्या, कुज्या एवं त्रिज्या को परिभाषित करते हुए स्पष्ट कीजिये।

2. पंचज्या से आप क्या समझते है।

3. पंचज्या साधन विधि लिखिए।

4. गणित ज्योतिष में द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, वित्रिभ एवं सत्रिभ की उपयोगिता बतलाइये।

इकाई - 2 वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विवेचन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वित्रिभादि विचार
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-350 के द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई से संबधित है, जिसका शीर्षक है- वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विवेचन। इसके पूर्व की इकाई में आपने पंचज्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब आप वित्रिभ सत्रिभादि की जानकारी लेने जा रहे है।

वित्रिभ, सत्रिभ आदि का विचार वस्तुत: गोल क्षेत्र में किया है। दृक्क्षेप वृत्त, क्रान्तिवृत्त में उर्ध्व एवं अध: दोनों भागों में मिलता है। उसी उर्ध्वोऽध: सम्पात बिन्दू को वित्रिभ तथा सत्रिभ के नाम से जाना जाता है।

आइए हम सभी वित्रिभ सत्रिभादि का ज्ञान इस इकाई में करने का प्रयास करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान लेंगे कि –

- वित्रिभ किसे कहते हैं।
- सत्रिभ किसे कहते हैं।
- गोल में वित्रिभ आदि का क्षेत्र कहां बनता है।
- वित्रिभ सत्रिभ का प्रयोग गोल में कहां होता है।

23 वित्रिभादि विचार

सूत्र परिभाषा –

सूत्रमूर्ध्वाधरं नाम यद्भूगर्भखमध्यगम्।
निरक्षोध्वा्रधरं यद् भूकेन्द्राद् व्यक्षखमध्यगम्।।
सूत्र पूर्वापरं यच्च प्राक्परस्वस्तिके गतम्।
समस्थानद्वये लग्नं समसूत्रं निगद्यते।।
ध्रुवाख्य ध्रुवयोलग्नं कोणसूत्रं च कोणगम्।।
दृगवृत्तकुजवृत्तैक्य गतं दृक्कुजमुच्यते।
स्वोदयास्तं त्वहोरात्रकुजैक्यद्वयसंयुतम्।।
व्सक्षोदयास्तसूत्रं यद् द्युरात्रोदवृत्तयोगगम्।।

अर्थात् भूगर्भ और खमध्य में अथवा उर्ध्व खमध्य और अध: खमध्य में जाने वाली सूत्र को उर्ध्वाधर सूत्र कहते हैं। उर्ध्वनिरक्षखमध्य एवं अधोनिरक्ष खमध्य में जाने वाले सूत्र को निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र कहते है। पूर्वस्वस्तिक एवं पश्चिमस्वस्तिक से जाने वाले सूत्र को पूर्वापर सूत्र और दोनों समस्थानों अर्थात् उत्तरी एवं दक्षिणी समस्थान में जाने वाले सूत्र को समसूत्र कहते है। दोनों ध्रुवों में जाने वाले सूत्र को ध्रुवसूत्र तथा कोणों में जाने वाले सूत्र को कोणसूत्र कहते हैं। दृगवृत्त और क्षितिजवृत्त सम्पात में जाने वाले सूत्र को स्वोदयास्तसूत्र तथा अहोरात्र एवं उन्मण्डल सम्पातद्वयगत सूत्र को निरक्षोदयास्तसूत्र या उदयास्तसूत्र कहते हैं।

उर्ध्वाधरखमध्यगतं सूत्रमूर्ध्वाधरसूत्रम्। निरक्षोर्ध्वाधरखमध्यगतं सूत्रं निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रम्।।

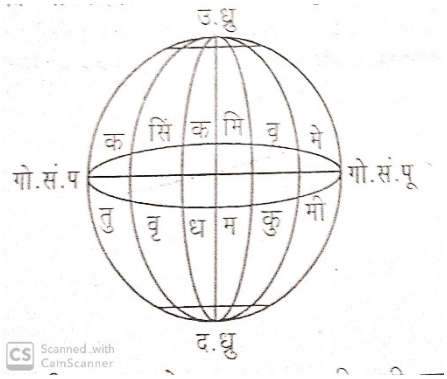

क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मक जो प्रदेश पूर्वक्षितिज में लगता है, उसे उदयलग्न कहते है। उससे १८० अंश के अन्तर पर क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मक प्रदेश पश्चिमक्षितिज में जहाँ लगता है उसे अस्त लग्न कहते है। एवं क्रान्तिवृत्त का राश्यात्मकप्रदेश उर्ध्व याम्योतृतरवृत्त में जहाँ लगता है वह राश्यात्मक दशम लग्न वा मध्य लग्न होता है। उदयलग्न को प्रथमलग्न वा इष्टकालिकलग्न कहते है। अस्तलग्न को सप्तमलग्न कहते हैं। क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश अध: याम्योत्तर वृत्त में लगता है, वह राश्यात्मक चतुर्थ लग्न है।

क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं। दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

लग्न से प्राप्त ९० अंश वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है वही वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने कहा है –

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभतुल्यलग्ने।
रवौ तदूनेऽभ्यधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्।।

उपपत्ति— सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चंद्र ग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूछाया द्वारा आच्छादित होता है अतः वह दृष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चंद्रमा जब सूर्य ग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति दृष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लंबन के कारण होती है।

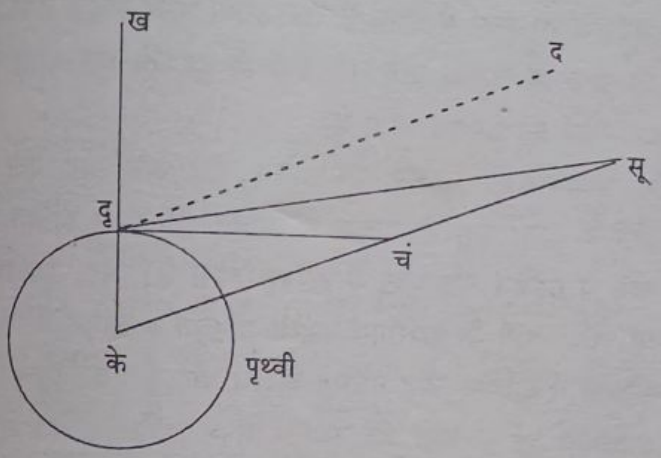

चित्र में,

के = भू केंद्र है।

दृ = दृष्टा की पृथ्वी के ऊपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चंद्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृद = रेखा **के चं सू** के समानांतर खींची गई है।

दृष्टा भूकेंद्र (के) से चंद्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ दृष्टा चंद्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चंद्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा–

$\angle$ख दृ चं = $\angle$ख के चं + $\angle$के चं दृ = $\angle$ख दृ द + $\angle$द दृ चं

तथा $\angle$दृ चं के, $\angle$ख के चं के लिए लंबन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि $\angle$दृ सू के है। यह चंद्र की लंबन शुद्धि से अल्प है।

376

∠दृ चं के लंबन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त नब्बे अंश वृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है वही विक्षिभ लग्न होता है। विक्षिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के ऊपर से तथा दूसरा कदम्ब प्रोत वृत्त लंबित रवि के ऊपर से क्रांतिवृत्त में जहाँ जहाँ लगता है उनके बीच का क्रांतिवृत्त पर चाप (रवि के लंबित स्थान से रवि स्थान पर्यंत) रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य विक्षिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लंबित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अतः वहाँ पर स्पष्ट लंबन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चंद्र एक ही बिंदु (रेखा) में होते हैं अतः एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चंद्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चंद्र पृष्ठ में लंबित होता है। अतः विक्षिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में लगेगा। अतः यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अतः गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लंबांतर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लंबान्तर जोड़ने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। विक्षिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चंद्रमा अधोभाग में होता है। अतः लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत वृत्त और क्रांति वृत्त के सम्पात से लंबित चंद्रोपरिगत कदम्ब प्रोत्त वृत्त और क्रांतिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अतः मध्यगति ग्रह (लंबित रवि स्थान) से शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अतः गर्भीय अमान्त काल में स्पष्टलम्बांतर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। अतः आर्योक्त ''तदूनेऽभ्यधिके'' युक्ति युक्त है। उपपन्न हुआ।

दृग्लंबन का परमत्व— भूकेंद्र से और भू पृष्ठ से स्वकक्षा स्थित रविकेंद्रगत रेखा द्वय चन्द्रकक्षा में जहाँ-जहाँ लगती है उसके अन्तर्गत चन्द्रगोलीय दृग्वृत्तचाप रवि लंबन है। इसी प्रकार भूकेंद्र से और भूपृष्ठ से चंद्रकक्षास्थ चंद्र केंद्रगत दोनों रेखायें रवि कक्षा में जहाँ जहाँ लगती है उनके अन्तर्गत रविगोलीय दृगवृत्त चाप चन्द्रलंबन है। इस तरह एक त्रिभुज बनता है।

भूकेंद्र से ग्रह केंद्र (रवि केंद्र या चंद्र केंद्र) पर्यन्त ग्रह कर्ण एक भुज, भूपृष्ठ से ग्रहकेंद्र पर्यन्त पृष्ठ कर्ण द्वितीय भुज, भूव्यासार्ध तृतीय भुज। इन भुजों से बनने वाले त्रिभुज में पृष्ठकर्ण और भूव्यासार्ध से उत्पन्न कोण = १८० – पृष्ठीय नतांश, कोणज्या और कोणोनभार्धांशज्या बराबर होती है, इसलिये ज्या (१८०–पृष्ठीय नतांश) = पृष्ठीय दृग्ज्या। अब अनुपात किया कि यदि ग्रह कर्ण में पृष्ठीय दृग्ज्या पाते हैं तो भूव्यासार्ध से क्या? इससे प्राप्तफल ग्रहलग्न कोणज्या (दृग्लग्नज्या) आती है, जिसका मान = $\frac{\text{पृ.दृग्ज्या} \times \text{भूव्यासार्ध}}{\text{ग्रह कर्ण}}$। इस सूत्र में ग्रहकर्ण तथा भूव्यासार्ध स्थिर हैं अतः सिद्ध हुआ कि पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व जहाँ जो, वहीं दृग्लम्बनज्या का भी परमत्व होगा। लेकिन पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व पृष्ठ क्षितिज में ग्रह के रहने से होता है, अतः पृष्ठ क्षितिज ही में दृग्लम्बन का परमत्व होता है यह सिद्ध हुआ। गर्भक्षितिज धरातल और पृष्ठक्षितिज धरातल के अन्तर्गत दृगमंडलीय चाप (कुच्छन्न कला) होता है।

ख स्वस्तिक से ग्रहगोलीय दृग्मण्डल और पृष्ठ क्षितिज के योग बिन्दु में जो भूव्यासार्धकला (कुच्छन्न कला) होती है वह परम लंबन होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"वित्रिभलग्नसमेऽर्के न लंबनं तदधिकोनके भवति।
वस्य क्रांतिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समा न तदा॥२॥"

सूर्यसिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।$\frac{१}{२}$।"
"लंबनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते॥२॥
मध्य लग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात् प्रविशोधयेत्।
धनमूनेऽसकृत् कर्म यावत् सर्वं स्थिरीभवेत्॥९॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वित्रिभोदयसमे न लंबनं भास्करे समधिकोनके भवेत्।
चेत् समा तदपमज्यकोत्तराऽक्षज्ययाऽस्त्यवनतिस्तदा नहि॥"

लम्बन ज्ञात करने का सूत्र –

$$\text{लंबन} = 4 \times \frac{\text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या को दृग्गति कहा गया है। यह वित्रिभ लग्न शंकु ही है।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्न में वित्रिभ लग्न का पर्याय हैं।

   क.द्युज्या ख. शंकु ग. क्रान्तिज्या घ. ज्या

2. कुज्या का अपर नाम क्या है?

   ख. क्रान्तिज्या ख. क्षितिज्या ग. द्युज्या घ. ज्या

3. क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर क्या बनता है।

   क. दृक्क्षेप ख. अयन ग. उन्मण्डल घ. क्रान्ति

4. दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे क्या कहते हैं।

   क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल

5. दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे क्याकहते है।

   क. वित्रिभलग्न ख. सत्रिभ लग्न ग. अयन घ. दृक्मण्डल

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना गोल में 'द्यु' का अर्थ अहोरात्र वृत्त होता है। द्युज्या को परिभाषित करते हुए गोल में कहा गया है कि – ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त में ग्रहस्थान से ध्रुवस्थान पर्यन्त को द्युज्याचापांश कहते है, तथा उसकी जीवा अर्थात् ज्या को 'द्युज्या' कहते हैं। इसका श्लोक भी इस प्रकार है –

ग्रहोपरि ध्रुवप्रोते ग्रहस्थानाद् ध्रुवावधि।
द्युज्याचापांशका ज्ञेयास्तज्ज्या द्युज्याभिधीयते।।

'कु' का अर्थ पृथ्वी या क्षितिज से है। तत्सम्बन्धित ज्या कुज्या या क्षितिज्या कहलाती है। ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से ग्रह पर्यन्त द्युज्या चाप है। नाड़ीवृत्त से ग्रहबिम्ब तक ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्तिचाप

है। अत: ९० अंश – क्रान्त्यंश = द्युज्याचापांश होता है। ध्रुवबिन्दु से द्युज्याचाप की दूरी पर जो वृत्त बनता है, उसे अहोरात्रवृत्त कहते है।

क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं। दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

वित्रिभ– क्रान्तिवृत्तीय लग्न से ९० अंश चाप की दूरी पर दृक्क्षेप बनता है। दृक्क्षेपवृत्त क्षितिज के उपर क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसे **वित्रिभलग्न** कहते हैं।

सत्रिभ– दृक्क्षेप और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्षितिज के नीचे जहाँ याम्योत्तरवृत्त में लगता है, उसे **सत्रिभ** लग्न कहते है।

भूमध्यरेखा– विषुवद् रेखा को ही भूमध्यरेखा कहते है।

उत्तर गोल – सूर्य का मेषादि छ: राशियों में स्थिति को उत्तरगोल के नाम से जानते है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.ख 2. ख 3. क 4. क 5. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा।

(ख) सूर्यसिद्धान्त– टिकाकार - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ग) गोल परिभाषा – टिका– डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) सूर्यसिद्धान्त– महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

ग्रहलाघवम्– टिका– प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

केतकीग्रहगणितम्– मूल लेखक - आचार्य वेंकट

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्रिभ एवं सत्रिभ से आप क्या समझते है।
2. गोल में वित्रिभ एवं सत्रिभ को समझाइयें।
3. गणित ज्योतिष में द्युज्या, कुज्या, त्रिज्या, वित्रिभ एवं सत्रिभ की उपयोगिता बतलाइये।

इकाई - 3 भारतीय वेध परम्परा

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भारतीय वेध परम्परा
3.4 वेधशाला विवेचन
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-508 के तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहोदयास्त, ग्रहयुति एवं दृक्कर्म आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहवेध की परम्परा में भारतीय वेध परम्परा एवं वेधशाला से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

भारतवर्ष में वेध परम्परा का प्रादुर्भव वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। कालान्तर में उसका क्रियान्वयन का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होते रहा है। कभी तपोबल से समस्त ग्रहों की स्थितियों को जान लिया जाता था, फिर ग्रहों को प्राचीन वेध-यन्त्रों से देखा जाने लगा। सम्प्रति अत्याधुनिक वेध-यन्त्रों से आकाशीय पिण्डों का अध्ययन करने की परम्परा आरम्भ हो चुकी है। सिद्धान्त ज्योतिष के लिए वेध प्रक्रिया एवं वेध के लिए वेधशाला आदि महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष शास्त्रीय वेध परम्परा का ज्ञान एवं वेधशालाओं के स्वरूप को जानने का प्रयास करते हैं।

3.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि वेध क्या है?
- वेध परम्परा भारतवर्ष में कब आरम्भ हुई?
- वेध की आवश्यकता क्यों पड़ी?
- वेधशालाओं का निर्माण का प्रयोजन क्या है?

3.3 भारतीय वेध परम्परा

भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल वेदों के षड्-वेदाङ्गस्वरुप में ज्योतिषशास्त्र प्रमुख अङ्ग के रुप में विद्यमान है। वेदाङ्गोंमें ज्योतिष का स्थान नेत्र के रूप में वर्णित है, जिसका कारण इसकी प्रत्यक्षता ही है।समस्त वेदाङ्गोंमें अग्रगण्यज्योतिष्पिण्डों (ग्रहों) के गति के कारणभूत, परमपवित्र, रहस्यमयी, समस्त-जगत का आधारभूत, जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि काल को प्रदर्शित करने वाला, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा ग्रहों के चार इत्यादि अनेक

स्वरूपों का कालश्रयात्मक ज्ञान ही 'ज्योतिषशास्त्र' है।इसके प्रमुख स्कन्धों में सिद्धान्त या गणित ज्योतिष है, जिसके माध्यम से सूर्यादिक ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कलनात्मक (गणनात्मक) काल (समय) को ज्ञात किया जाता है। वैदिक काल से ही कालविधानशास्त्र की आवश्यकता ही उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती है, क्योंकि वेदों में उद्धृत यज्ञों के सफलतम आयोजन हेतु काल का ज्ञान अपरिहार्य है जैसा कि कहा गया है-

वेदा हि यथार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदंकालविधानशास्त्रंयोज्योतिषंवेदसवेदयज्ञान्।।

सामान्यतः अल्पावधि में इन काल रुपी सिद्धान्तों की गणनातथा समयमान में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु दीर्घ कालावधि मेंयुगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण-प्रकर्षण-विकर्षण, अयन-चलन, शर इत्यादि तत्त्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है।अतःत्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह-गणित परम्परा के अन्तर्गत **'वेध तथा वेधशालाओं' का** महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में वेध परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

सृष्टि के आविर्भाव के समय से ही महदन्तरिक्ष में विद्यमान ज्योतिषोक्त् ग्रहपिण्डों के रहस्य को जानने की उत्कट अभिलाषा आदिमानव की रही थी और इस हेतु उनके प्राथमिक प्रयास, की गई क्रियाएँ, कार्य में आए उपकरण, विचारित योजनाएँ, स्वीकृत मान्यताएँ तथा स्थापित सिद्धान्त ही वेध प्रक्रिया के प्रथम सोपान के रूप में विज्ञजन स्वीकार करते हैं। यही प्रकार व क्रम अनवरत वृद्धि को प्राप्त होता हुआ श्रुति व स्मृतियों में व्यापक रूप से प्राप्त होता है।

<u>वेध का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ एवं परिभाषा</u> -

वेध शब्द का निर्माण **'विध्'**धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में **"नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।"**नलिकादि यन्त्रों सेग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है।

दृष्टि तथा **यन्त्रभेद** से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा

बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है। यहाँ महर्षियों द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायामादि तपस्याओं से भक्तिज्ञानजन्य नेत्र द्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों के अवलोकन को **अन्तर्दृष्टिवेध** तथा स्व-

स्वनग्न नेत्र द्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकन को **बाह्यदृष्टिवेध** माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणों से सूर्यादि ज्योति:पिण्डों को देखते हैं तो यन्त्रवेध होता है।

वस्तुतः स्थूल-सूक्ष्मकालविभाग गणित के अन्तर्गत अनर्ह सूक्ष्म-अवयव कालभेद से भविष्यकाल में दीर्घस्वरूप धारण करके ग्रहगणितादिक में विलक्षणता उत्पादित करते हैं अतः गणित की शैथिल्यताजन्य उत्पन्न अन्तरस्वरूप बीजसंस्कारादिक विधियों को वेधयन्त्रों वाउपकरणों की सहायता से साक्षात् वेध करके गणकों के द्वारा शोधित किया जाता है।

वेधशालाओं में यन्त्रों-उपकरणों आदि के सहयोग से कालान्तर के वशीभूत प्राप्त अन्तर का बीज संस्कार करने पर गणितागत-ग्रह आकाशस्थ-ग्रह के सम्मुख होते हैं। इसीलिए वेधकर्मकुशल आचार्यों के द्वारा सिद्धान्त-ग्रन्थों में सम्पूर्ण सिद्धान्तों के रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उनके दर्शन तथा प्रत्यक्ष अवलोकन हेतु यन्त्र-उपकरण, गोलबन्धन आदि के निर्माणादि का स्पष्ट निर्देश **सूर्य-सिद्धान्त** में प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

पारम्पर्योपदेशेनयथाज्ञानंगुरोर्मुखात्।

आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।।

भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।।i

पाश्चात्य तथा यूरोपियन खगोलशास्त्री प्रायः मिथ्या प्रलाप करते रहे हैं कि वेध की परम्परा भारतीयों में विद्यमान नहीं थी जबकि प्राचीन वैदिक-वाङ्मय में सर्वत्र वेध अथवा ग्रहों के अवलोकन का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि जो नक्षत्र (सप्तर्षि) उच्चस्थ आकाश में रखे हुए रात्रि में दृष्टिगत होते हैं वे दिन में कहीं चले जातेहैं-

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तन्ददृश्रे कुहचिद् दिवेयुः।

वैदिककाल में ही नक्षत्रों, तारापुञ्जों, सप्तर्षिमण्डल एवं नक्षत्रों की युति-अन्तर आदि का वर्णन मिलता है, जिनका ज्ञान वेध के बिना सम्भव नहीं था। यथोक्तम्-**अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहतिः।**

वेधयन्त्रों में **शङ्कु-यन्त्र** का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन है। चल तथा अचल शङ्कु-यन्त्र का प्रयोग ऋग्वेदकाल में हाता था, जैसा कि ऋग्वेद के एक मन्त्र में शङ्कु से वेध प्रक्रिया का वर्णन है-

द्वादशं प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।

तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कुवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

एक चक्र अर्थात् वृत्त में तीन केन्द्रों की कल्पना करके उसमें 300+60=360 शङ्कुओं को चल-अचल के रूप में स्थापित करके द्वादश प्रधियाँ लगायी जाती हैं। यह एक पलभा (घटिकायन्त्र) की कल्पना है जिसके किनारे के दो शङ्कुओं के माध्यम से 60° पर करने वाले षष्ट्यंश यन्त्र की प्रकल्पना की गयी है। **अथर्वज्योतिष** में द्वादश अङ्गुल शङ्कु के माध्यम से छाया का आनयन करके मुहूर्त लाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

शुल्वसूत्रों में यज्ञसम्पादन के प्रसङ्ग में कुण्ड-मण्डपादि साधन के लिए शङ्कु द्वारा दिग्-साधन का उल्लेख प्राप्त होता है। **महाभारतकाल** में भी ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का समुचित ज्ञान था। शल्यपर्व में शुक्र एवं मङ्गल का चन्द्रमा से युति का वर्णन प्राप्त होता है। भीष्मपर्व में तो ग्रहों के युति अन्तरादि विषयों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। इसके परवर्ती ज्योतिष के ग्रन्थों में वेध तथा वेधयन्त्रों का पूर्णतया उल्लेख मिलता ही है। अतः वेध-प्रक्रिया तथा वेधशाला की निर्माण-प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में विद्यमान थी। यह भारतीय ज्ञान शनैः-शनैः यूरोप, ग्रीक तथा अरब में प्रसार को प्राप्त हुआ और वहाँ के ज्योतिषियों ने इस वेध-प्रक्रिया में पर्याप्त अभिरूचि का प्रदर्शन किया। रेखागणित का वर्णन शुल्वसूत्र (यजुर्वेद) में पाया जाता है।

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र का प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ स्वीकृत है। इसके स्पष्टाधिकार में कहा गया है-

तत्तदगतिवशान्नित्यं यथादृकतुल्यता ग्रहाः।

प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अर्थात् उन गतियों के अनुसार प्रतिदिन ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्य हो जाते हैं (अर्थात् जिस स्थान पर वेध द्वारा दृष्टिगोचर होते हैं) उस स्पष्टीकरण प्रक्रिया को मैं आदरपूर्वक कह रहा हूँ। सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ के अन्त में गोल, बीज, शङ्कु, यष्टि, धनु, कपाल, मयूर, नर तथा वानर यन्त्रों का उल्लेख कालसाधन के सन्दर्भ में प्राप्त होता है। यथोक्तम्-

शङ्कु यष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा।

गुरुपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः।।

तोययन्त्रकपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः।

ससूत्ररेणुगर्भेश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्।।

ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तग्रन्थों में **'आर्यभटीयम्'**में कालमापक गोल-यन्त्र का निर्माणतथा प्रयोग-विधि निर्दिष्ट है तथा शङ्कु-यन्त्र का भी वर्णन मिलता है। वराहमिहिर के **पञ्चसिद्धान्तिका** में वेध सम्पादनपूर्वक बीज संस्कार भी दिखाई देता है।वराहमिहिर के अनन्तर वेध-परम्परा में **ब्रह्मगुप्त** का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रह्मगुप्त महान दैवज्ञ, वेध-कुशल तथा दृक्सिद्ध ग्रहों के पोषक थे। उन्होंने वेध द्वारा यह अनुभव किया कि प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा दृक्सिद्ध ग्रह प्राप्त नहीं होते। अतः ब्रह्मगुप्त ने स्फुटदृक्सिद्ध ग्रहों के आनयन के लिए ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की रचना की। इस ग्रन्थ में स्पष्ट सङ्केत है कि नलिकादि यन्त्रों द्वारा स्पष्टतर बीज का साधन कर उससे संस्कृत ग्रहों द्वारा ही निर्णय एवं आदेश करना चाहिए। यथोक्तम्-

संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः।

तत्संस्कृते ग्रहेभ्यः कत्तव्यौ निर्णयादेशौ।।

अभ्यास प्रश्न -1

1. वेध शब्द का निर्माण किस धातु से हुआ है?
   क. विध् ख. विद् सत्तायाम ग. वि घ. भू
2. दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध कितने प्रकार के होते हैं?
   क. 4 ख. 2 ग. 6 घ.8
3. द्वादशांगुल शंकु के माध्यम से छायानयन द्वारा मुहूर्त्त लाने का उल्लेख कहाँ मिलता है?
   क. ऋक् ज्योतिष ख. यजु ज्योतिष ग. सामज्योतिष घ. अथर्वज्योतिष
4. रेखागणित का वर्णन कहाँ मिलता है?
   क. शूल्वसूत्र में ख. साम ज्योतिष में ग. अथर्व जयोतिष में घ. कोई नहीं
5. 'पंचसिद्धान्तिका' किसकी रचना है?
   क. आर्यभट्ट ख. गणेश ग. केशव घ. वराहमिहिर
6. 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' के प्रणेता कौन हैं?

क. वराहमिहिर ख. ब्रह्मगुप्त ग. लल्ल घ. लगध

ब्रह्मगुप्त के बाद 1442 शकाब्दतक वेध-परम्परा वृद्धि पथ में दिखायी देती है। इस बीच **मुञ्जाल, श्रीधराचार्य, बल्लालसेन, केशवार्क, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, ज्ञानराज** इत्यादि वेधनिपुण दैवज्ञों के प्रयास वेध की दिशा में अन्यतम स्थान रखते हैं।**श्रीमद्भास्कराचार्य** ने सिद्धान्तशिरोमणि में गोलबन्धाधिकार तथा यन्त्राध्याय नामक शीर्षकों में वेधयन्त्रों का सविस्तार उल्लेख किया है।

दृक्सिद्ध ग्रहसाधन तथा वेध-परम्परा में **केशवदैवज्ञ** तथा उनके पुत्र **गणेशदैवज्ञ** का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 1418 शक के लगभग इन्होंने ग्रह-कौतुक नामक करणग्रन्थ की रचना वेधसिद्ध ग्रहों के आधार पर की है। कालान्तर से इनके ग्रन्थ को वेध द्वारा स्थूल देखकर इनके पुत्र गणेशदैवज्ञ ने वेध द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से ग्रहलाघव नामक करणग्रन्थ की रचना की। तत्पश्चात् लगभग दो शताब्दियों तक ज्योतिष एवं वेध-परम्परा का प्रचार-प्रसार सामान्य गति से चलता रहा। इसके बीच अनेक विद्वान हुए, जिनमें **कमलाकरभट्ट** तथा **मुनीश्वर** आदि प्रमुख हैं। इनके ग्रन्थों में भी वेध-सम्बन्धी पूर्वागत परम्परा का ही परिपालन है।

इस तरह सूर्यसिद्धान्त या आर्यभट्ट के काल से प्रारम्भ कर लगभग 15वीं शताब्दी तक मुख्यतया **शङ्कु-यन्त्र, घटीयन्त्र, नलिकायन्त्र, यष्टियन्त्र, चापयन्त्र, तुरीययन्त्र, फलकयन्त्र, दिगंशयन्त्र** तथा **स्वयंवहयन्त्र** का प्रयोग दिखाई देता है।यद्यपि इस काल में वेध प्रक्रिया विकसित हो चुकी थी, नये यन्त्रों का आविष्कार भी प्रचलन में था, परन्तु स्थायी वेधशालाओं की चर्चा कहीं प्राप्त नहीं होती।

वैदिक वाङ्मय में ज्योतिर्विज्ञान का स्वरूप त्रिस्कन्धात्मक प्राप्त नहीं होता है, तथापि नामान्तर से यह सुविख्यात था। निश्चित ही उस समय यन्त्रों की रचना व उनसे वेध की प्रणाली अपने चरमोत्कर्ष पर रही होगी। इसीलिये यजुर्वेद में ग्रहवेध करने वाले को 'नक्षत्रदर्श' कहा गया है -

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्।(यजुर्वेद ३०/२०)

वैदिक वेधविधान वैज्ञानिक व विशुद्ध फल देने वाला है। इसीलिये महर्षियों ने भूमि की स्थिति को सूर्य की आकर्षण शक्तियों से प्रमाणित करते हुये प्रतिपादित किया है –

सविता यन्त्रै: पृथ्वीमरभरणात्। ऋग्वेद -(१०/१४९।१)

कौषीतकि ब्राह्मण में निरन्तर सूर्योदय का वेध करते हुए वर्ष की अवधि व काल की इकाईयों को निर्धारण करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर वेध परम्परा का संकेत मिलता है।

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि ऋषि वामदेव ने वृहस्पतिग्रह का वेध कर उसके समस्त रहस्यों को जन सामान्य के लिये प्रकाशित किया। उन्होंने बताया कि –

वृहस्पति: प्रथमं जायमानो महो ज्योतिष: परमे व्योमन्।

सप्तास्रूसतुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि।। (ऋग्वेद – ४/५०/१)

भृगु ऋषि के पुत्र ऋषि वेनभार्गव ने शुक्र ग्रह का वेध करते हुए उसके तत्वों व रहस्यों को प्रतिपादित किया। ऋग्वेद के सूक्तों (९-२५, १०-१२३)में शुक्र से सम्बन्धित अत्यन्त रोचक ज्ञान प्रामाणिकता से प्रतिपादित हुआ है। जैसे –

अधिद्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरूचद्विदिवो रोचना कवि:। (ऋग्वेद ९/८५/९)

भानु: शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्। (ऋग्वेद ९-८५/१२)

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।

इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।। (ऋग्वेद १०/१२३/१)

इस प्रकार का अतिसूक्ष्म ग्राहेत्पत्ति का विज्ञान तथा ग्रहादिपिण्डों की स्थितियों का विवेचन निश्चित ही वेधपरम्परा से ही सम्भव हुआ है। इतनी प्रामाणिकता होना वेध परम्परा के समृद्ध विकसित स्वरूप को संकेतित करती है। आज भी वह प्राचीनतम व परम प्रामाणिक वेध प्रक्रिया अनुसन्धान का विषय है।

निश्चित रूप से वेदांग ज्योतिष के समय आधुनिक ज्योतिष के प्रमुख सिद्धान्तों का प्रचलन था। इस समय ज्योतिर्विज्ञान को वेदांगों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। वेदों के आधारभूत कर्म यज्ञविधान के लिये उचित समय व सूक्ष्म दिग्देश ज्ञान को निर्दिष्ट करने के कारण इसे मुख्य स्थान प्रदान किया गया।

3.4 वेधशाला विवेचन

भारत में वेधशालाओं का वास्तविक इतिहास **महाराजसवाईजयसिंह द्वितीय** के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। जयसिंह का समय 1686 ई0 से 1743 ई0 पर्यन्त माना जाता है। जयसिंह का जन्म 1686 ई0 में हुआ था और त्रयोदश वर्ष की आयु में वे आम्बेर राज्य की गद्दी पर

बैठे। महाराज को **ज्योतिष** तथा **वेध** इत्यादि का अत्यन्त ज्ञान था तथा वे इस कार्य में रूचि भी लेते थे। तत्कालीन करणादि ग्रन्थों से प्राप्त मान दृग्तुल्य नहीं होते थे और बहुत अन्तर पड़ता था। उस समय **टॉलमी की ऐलमैजेस्ट-ला-हायर की ज्योतिष सारणियाँ**, **उलूगवेग की ज्योतिष सारणियाँ** तथा भारतीय ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे। उलूगवेग की सारिणी 841 हिजरी में बनी थी, उसी को संसोधित करके **'जिजमुहम्मदशाही'**नामक सारिणी-ग्रन्थ का निर्माण हुआ। यह सारिणी हिजरी सन् 1938 के लिए बनी थी। इसके अतिरिक्त हिन्दू तथा यूरोपीय ग्रन्थों के द्वारा सारणियों को देखा गया। परन्तु किसी सारिणी में दृक्तुल्यता नहीं थी।

अतः महाराजसवाईजयसिंह ने इस गणना को शुद्ध करने का सङ्कल्प लिया। उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम और यूरोपियन खगोलशास्त्रियों को आमन्त्रण दिया। सभी विद्वानों का सम्यक् सहयोग लेकर सर्वप्रथम महाराज ने **दिल्ली** में एक वेधशाला बनवायी। इसके पश्चात् **जयपुर, उज्जैन, वाराणसी** तथा **मथुरा** में भी वेधशालाएँ स्थापित की गयीं। ये वेधशालाएँ इसलिए बनवायी गयीं कि विभिन्न स्थानों पर एक साथ वेध करने पर स्पष्टान्तरआदि का संस्कार यदि कर दिया जाय तो वेध द्वारा प्राप्त सर्वत्र का मान एक ही होना चाहिए। इसमें शुद्धता का बोध होगा।

दिल्ली की वेधशाला का निर्माण 1724 ई0 में किया गया। इसमें मिश्रयन्त्र के अन्तर्गत पाँच यन्त्रों का निर्माण सम्राटयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, रामयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र तथा पलभायन्त्र का निर्माण हुआ। वर्तमान में यह **'जन्तर-मन्तर'**के नाम से भी जाना जाता है। **1728 ई0 में जयपुर की वेधशाला** निर्मित हुई। इसमें उन्नीस यन्त्रों का निर्माण किया गया- चक्रयन्त्र, पूर्वकपालीयन्त्र, पश्चिमकपालीययन्त्र, रामयन्त्र, दिगंशयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, नाड़ीवलयदक्षिणगोलयन्त्र, नाड़ीवलयोत्तरगोलयन्त्र, पलभायन्त्र, कान्तिवृत्तयन्त्र, यन्त्रराज, उन्नतांशयन्त्र, द्वादशराशिवलययन्त्र, लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र तथा ध्रुवदर्शकयन्त्र। **उज्जैन की वेधशाला का निर्माण 1734 ई0** में हुआ। इसमें सम्राटयन्त्र, नाड़ीवलययन्त्र, दिगंशयन्त्र, शङ्कुयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, दिक्साधनयन्त्र तथा धूपघटिका यन्त्र का निर्माण किया गया। **काशी (वाराणसी) की वेधशाला 1737 ई0**में बनवायी गयी। इस वेधशाला मे लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र, दिगंशयन्त्र और नाड़ीवलययन्त्र बने हैं। **सन् 1738 ई0 में मथुरा की वेधशाला** निर्मित हुई। इसमें क्षितिजवृत्ताकारयन्त्र, विषुवद्वृत्तीययन्त्र, छदिसमस्थानकयन्त्र तथा षष्ठांशविलिखित मानयन्त्र बनवाये गये थे।

जयसिंह के अनन्तर आधुनिक वेधकर्ताओं में सर्वप्रथम **वेंकटेशबापूदेवशास्त्री केतकर** महोदय का नाम स्मरणीय है। इन्होंने प्राच्य-पाश्चात्य ग्रहगणित के समन्वय से 1818 शक में सूक्ष्मसिद्धान्तमण्डित 'केतकीग्रहगणित' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसी क्रम में सन् 1835 ई0 के उड़ीसा प्रान्त के **सामन्त चन्द्रशेखर** का भी वेध के क्षेत्र में योगदान स्मरणीय है। इन्होंने दृग्गणितैक्य-सम्पादन के लिए प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत यन्त्रवर्णन के अनुसार कुछ यन्त्रों का निर्माणकर वेध द्वारा 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। ज्योतिषशास्त्र की आधुनिक परम्परा में **डॉ मेघनाद साहा** आदि विद्वान स्मरणीय हैं।

आधुनिक भारतीय वेधशालाओं में **मद्रास वेधशाला, तमिलनाडु प्रदेशस्थ कोडाईकनाल वेधशाला, नीलगिरि पर्वत पर स्थित उटकमण्ड वेधशाला, उस्मानिया वेधशाला** आदि प्रमुख हैं। और साथ ही साथ राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में फतेहसागर जलाशय के निकट स्थित **उदयपुर वेधशाला** और उत्तराञ्चल प्रदेश के नैनीताल शहर में स्थित **नैनीताल वेधशाला** भी देश की श्रेष्ठवेधशालाओं में परिगणित है।[ii] हाल के कुछ दशकों में भारतीय वेधशाला के निर्माता आचार्य **प्रो0 कल्याणदत्तशर्मा जी** ने **सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, लालबहादुरशास्त्री-राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ ((संस्थान) नई दिल्ली, जयपुर, लखनऊ विश्वविद्यालय के ज्योतिर्विज्ञानविभागीयवेधशाला** तथा **देवसंस्कृतिविश्वविद्यालय, हरिद्वार** में नवीन वेधशालाओं का निर्माण

करवाया है।

प्रायः दैवज्ञों का मत है कि जब सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों के द्वारा ग्रहों की स्थिति, ग्रहण, शृङ्गोन्नति तथा उदयास्तमें **'न प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते'**इस कथन के अनुसार वेधशालाओं का प्रयोजन होना अवश्यम्भावी है। प्रायः देखा जाता है कि सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों में ग्रह-स्पष्टादि लाने पर दृश्य-ग्रह स्थिति से कुछ अन्तर परप्राप्त होता है जो नितरांअशुद्ध है। आजकल बिना बीज संस्कार से संस्कारित ग्रहलाघव और मकरन्दादि ग्रन्थों से आनीत ग्रह दृश्य के समनुकूल नहीं होते हैं जबकि सर्वत्र दृग्गणितैक्य मानका समादर किया जाता है। यात्रा विवाह, उत्सव तथा जातकशास्त्र (जन्मकुण्डली निर्माण) में स्पष्ट ग्रहों से ही फलादेश की स्फुटता बतलायी गयी है, अतः दृग्गणितैक्य मान ही ग्राह्य है। इस सन्दर्भ में **सिद्धान्तशिरोमणि** केप्रणेता **श्रीमद्भास्कराचार्य** का कथन स्मरणीय है-

यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।

स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृदया।।

वशिष्ठ सिद्धान्त में भी कहा गया है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले तेन दृग्गणितैक्यकम्।

दृश्यते तेन पक्षेणकुर्यातिथ्यादिनिर्णयम्।।

इस प्रकार सभी फलादि दृग्गणितैक्य स्पष्टग्रहों पर आश्रित होने पर ही सिद्ध होते हैं। यदि गणितागत ग्रह दृकतुल्य नहीं है तो वेधशाला के यन्त्रों के माध्यम से इनकी स्थिति को निर्धारित किया जा सकता है।

वेधशाला की प्रासंगिकतातथा उपयोगिता

निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अवलोकनार्थहै-

1. **ग्रहादिकों के दृग्गणितैक्य निर्णय हेतु**
2. **कालान्तरागतअन्तर के अन्वेषण हेतु**
3. **दिग्देशकाल निर्धारण के लिए**
4. **क्षयाधिमास-काल-स्थितितत्त्व के परिशीलन हेतु**
5. **सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में स्थितिकाल-स्पर्श-सम्मीलन-मध्यग्रहण-उन्मीलन-मोक्षादि अवस्था, स्थिति, समय, प्रभावादि के अन्वेषण हेतु**
6. **अक्षक्षेत्रों की सभी अवस्थाओं तथा स्थितियों के परिज्ञान हेतु**
7. **ग्रह-नक्षत्रादि की संस्थिति-चार-व्यस्थिति-वर्ण-स्वरूप-कक्षाक्रमादि के सम्यक् अवबोधनार्थ।**
8. **गोलीय पदार्थों के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए**
9. **खगोलीय घटनाओं के वेधप्रयुक्त परिलेख को प्रदर्शित करने हेतु**
10. **ग्रह-नक्षत्र युति-ग्रहयुद्ध-समागम-शृङ्गोन्नति-जयपराजयादि विशिष्ट गोलीय विलक्षण घटनाओ के प्रत्यक्षीकरण हेतु।**

इसके साथ ही साथ, अन्य समस्त दृष्ट-अदृष्ट कटाह के रूप में स्थित ब्रह्माण्ड के स्वरूप को हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष दर्शन के लिए वेधशाला परम उपयोगी है। अतः आज ज्योतिर्गणित के उन्नयन हेतु वेधशालाओं की महती आवश्यकता है और यही उसका परमोद्देश्य

है।इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन पुरुषार्थचतुष्टय के साधन-स्वरूप ज्योतिर्विज्ञान की आधारभूत प्रयोगशाला, वेधशाला ही है। इसके अतिरिक्त कहीं अन्य इसका परीक्षण, प्रयोग, अनुसन्धान, ज्ञान सम्भव नहीं है। वेधशाला के इन सिद्धान्तों का कालगणना तथा ग्रहादि साधन के सन्दर्भ मेंप्रात्यक्षिक स्वरूप हीअन्य शास्त्रों से इसकी आवश्यकता, उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को स्वयं सिद्ध करता है। यथोक्तम्-

अप्रत्याक्षिशास्त्राणिविवादस्तेषु केवलम्।

प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।।

वेध प्रक्रिया गणित से साधित ग्रह को नेत्र द्वारा प्रत्यक्ष देखने की प्रक्रिया का नाम है। अर्थात् गणितागत ग्रह जब वेध द्वारा प्राप्त ग्रह से समान हो, तब उसे दृग्गणितैक्य कहा जाता है। आचार्य आर्यभट्ट, श्रीपति, लल्ल, श्रीधर, पद्मनामभ, ब्रह्मगुप्त एवं गणित में नवीन-नवीन परिष्कार कर के अपनी सद् युक्तियों द्वारा अपने ग्रन्थों का सर्वोत्तम सिद्धान्त ग्रन्थों की सारणी में स्थापित करने वाले ज्योतिषरत्न 'भास्कराचार्य' आदि ने अपने-अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में यन्त्राध्याय द्वारा यन्त्रों का वर्णन कर के वेध-विद्या की इस परम्परा को आगे बढ़ाने का परम श्लाघ्य प्रयास किया है।

अतीन्द्रियों द्वारा ग्रहों के विषय में प्रतिपादित ज्ञान में कुछ स्थूलता दिखाई देने पर परवर्ती आचार्य बीज संस्कार द्वारा उसे शुद्ध कर लिया करते थे। आचार्य गणेश दैवज्ञ का नलिका बन्धन व केतकर का स्फुट संस्कार प्रदान कार्य इसी श्रृंखला में किये गये स्तुत्य प्रयास हैं। मध्यकाल में यवनों के द्वारा भी वैदिककाल से चली आ रही वेधज्ञान प्रणाली का अनुसरण किया गया। यहाँ 'तूलांश' व मिर्जा

उलूकवेग द्वारा स्थापित यन्त्रशालाओं का वर्णन मिलता है।

मुगलकाल की सांध्यवेला में अश्वमेध यज्ञ से सुशोभित जयपुराधीश सवाई जयसिंह देव नृपति ने पवित्र भारतवर्ष के पाँच ऐतिहासिक नगरों में एक-एक करके पाँच वेधशालाएँ स्थापित की थी। इनमें मथुरा एवं वाराणसी की वेधशालाएँ तो भग्नावशेषमात्र हैं, दिल्ली की यन्त्रशाला में मिश्रयन्त्रादि यन्त्र प्राप्त होते हैं। 'क्षिप्रा' तट पर स्थित 'उज्जैन' की वेधशाला में पाँच यन्त्र सुरक्षित हैं। इन सब प्राचीन यन्त्रशालाओं में 'सवाई जयपुर' की यन्त्रशाला (जन्तर-मन्तर) आज भी सुरक्षित एवं यन्त्रराज, क्रान्तिराज, द्वादशराशिवलयादि यन्त्रों तथा लघु-वृहत् सम्राटयन्त्र षष्ठांशयन्त्रादि यन्त्रों से विभूषित होकर जनता एवं विद्वानों को दो-दो सेकेण्ड का समय क्रान्ति, अक्षांश, उन्नतांश, चर, अग्रा, नतांश, ध्रुवोन्नति, रात्रि में ग्रहों का वेध प्रकार आदि विविध खगोलीय पदार्थों का सूक्ष्मतम

दिग्दर्शन कराती है। पूर्व में इनमें से कतिपय यन्त्र चूने के थे, जिनसे वेध क्रिया में स्थौल्यभय बना रहता था, इसे ध्यान में रखकर श्रद्धेय गोकुलचन्द जी भावन व श्री चन्द्रधर जी गुलेरी ने अंग्रेज अभियन्ता के सहयोग से जयपुरीय यन्त्रालय का जीर्णोद्धार कर के परम सुन्दर व वेधोपयोगी बना दिया।

उज्जैन यन्त्रशाला का जीर्णोद्धार श्री सूर्यनारायण व्यास ने कराया तथा दिल्लीस्थ वेधशाला का जीर्णोद्धार केदारनाथ जी चौरास्या द्वारा सम्पन्न किया गया था।

3.5सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल वेदों के षड्-वेदाङ्ग स्वरुप में ज्योतिषशास्त्र प्रमुख अङ्ग के रुप में विद्यमान है। वेदाङ्गोंमें ज्योतिष का स्थान नेत्रत्वेन मूर्धा के रूप में वर्णित है, जिसका कारण इसकी प्रत्यक्षता ही है।समस्त वेदाङ्गोंमें अग्रगण्यज्योतिष्पिण्डों (ग्रहों) के गति के कारणभूत, परमपवित्र, रहस्यमयी, समस्त-जगत का आधारभूत, जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि काल को प्रदर्शित करने वाला, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा ग्रहों के चार इत्यादि अनेक स्वरूपों का कालश्रयात्मक ज्ञान ही 'ज्योतिषशास्त्र' है।इसके प्रमुख स्कन्धों में सिद्धान्त या गणित ज्योतिष है, जिसके माध्यम से सूर्यादिक ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कलनात्मक (गणनात्मक) काल (समय) को ज्ञात किया जाता है। वैदिक काल से ही कालविधानशास्त्र की आवश्यकता ही उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती है।सामान्यतः अल्पावधि में इन काल रुपी सिद्धान्तों की गणनातथा समयमान में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु दीर्घ कालावधि मेंयुगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण-प्रकर्षण-विकर्षण, अयन-चलन, शर इत्यादि तत्त्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है।अतःत्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह-गणित परम्परा के अन्तर्गत **'वेध तथा वेधशालाओं' का** महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में वेध परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। सृष्टि के आविर्भाव के समय से ही महदन्तरिक्ष में विद्यमान ज्योतिषोक्त् ग्रहपिण्डों के रहस्य को जानने की उत्कट अभिलाषा आदिमानव की रही थी और इस हेतु उनके प्राथमिक प्रयास, की गई क्रियाएँ, कार्य में आए उपकरण, विचारित योजनाएँ, स्वीकृत मान्यताएँ तथा स्थापित सिद्धान्त ही वेध प्रक्रिया के प्रथम सोपान के रूप में विज्ञजन स्वीकार करते हैं। यही प्रकार व

क्रम अनवरत वृद्धि को प्राप्त होता हुआ श्रुति व स्मृतियों में व्यापक रूप से प्राप्त होता है। वेध शब्द का निर्माण 'विध्'धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में "नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।" नलिकादि यन्त्रों सेग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है। दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध दो प्रकार का होता है-दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध–वेध शब्द का निर्माण 'विध्'धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र– जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला– वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाताजाता है, उसका नाम वेधशाला है।

रेखागणित– रेखाओं से सम्बन्धित गणित का ज्ञान जिसके अन्तर्गत हम करते हैं, उसका नाम रेखागणित है।

शंकु– पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। यह द्वादशांगुल होता है।

पंचसिद्धान्त– पौलिश,रोमक, वसिष्ठ, सौर एवं पितामह के सिद्धान्तो को 'पंचसिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है। इस पर आधारित 'पंचसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ की रचना वराहमिहिर ने की है।

वेधयन्त्र– आकाशस्थ ग्रहपिण्डों, नक्षत्रों को वेध करने वाला यन्त्र 'वेधयन्त्र' कहलाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. घ 4. क 5. घ 6. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक– पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त– आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.)प्रस्तरवेधशाला– प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्–प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय– डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम्– प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि– पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक–मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय वेध परम्परा का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
2. वेध प्रयोजन स्पष्ट कीजिये।
3. वेधशाला पर प्रकाश डालिये।
4. ज्योतिष में वेध का महत्व प्रतिपादित कीजिये।
5. यन्त्र से आप क्या समझते है?स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 4 यन्त्रों का परिचय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 यन्त्र परिचय
4.4 विविध यन्त्र विवेचन
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बीएजेवाईएन-350 के द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – यन्त्रों का परिचय। इसके पूर्व की इकाई में आपने भारतीय वेध परम्परा तथा वेधशाला आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहवेध हेतु यन्त्रों से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

भारतवर्ष में वेध परम्परा का प्रादुर्भव वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। कालान्तर में उसका क्रियान्वयन का स्वरूप समय-समय पर परिवर्तित होते रहा है। कभी तपोबल से समस्त ग्रहों की स्थितियों को जान लिया जाता था, फिर ग्रहों को प्राचीन वेध-यन्त्रों से देखा जाने लगा। सम्प्रति अत्याधुनिक वेध-यन्त्रों से आकाशीय पिण्डों का अध्ययन करने की परम्परा आरम्भ हो चुकी है। सिद्धान्त ज्योतिष के लिए वेध प्रक्रिया एवं वेध के लिए वेधशाला आदि महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिष शास्त्रीय वेध परम्परा का ज्ञान एवं वेधशालाओं के स्वरूप को जानने का प्रयास करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि यन्त्र क्या है?
- यन्त्रों का निर्माण भारतवर्ष में कब आरम्भ हुई?
- प्रमुख वेध-यन्त्र कौन-कौन से हैं?
- वेधशालाओं में यन्त्रों की क्या आवश्यकता है?
- यन्त्र का बोध करने में समर्थ हो जायेंगे।

4.3 यन्त्र परिचय

प्रत्येक युग में स्वयं भगवान भास्कर ने महर्षियों को ज्योतिर्विज्ञान का उपदेश दिया है। वही ज्ञान सूर्यांशपुरूष ने मय को बताया। उनके संवाद स्वरूप आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में इस वेधपरम्परा का प्रामाणिक निर्देश प्राप्त होता है। ग्रहों की गति के कारण उनके दैनिक वेध करने तथा गणित से उनकी यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहा:।

प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

प्रयोजन के साथ ही विविध प्रकार के वेधयन्त्रों का परिचय भगवान सूर्य ने इस प्रकार निर्देशित किया है –

कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत्।
एकाकी योजयेद् बीजं यन्त्रं विस्मयकारिणि।।
शंकु यष्टि धनुश्चक्रै श्छायायन्त्रैरनेकधा।
गुरूपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतीन्द्रितै:।।
तोययन्त्रकलापाद्यैर्मयूरनर वानरै:।
ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्।।
पारदाराम्बुसूत्राणि शुल्वतैलजलानि च।
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभा:।।
ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्।।
नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ ।
छायासंसाधनै: प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम्।।

यहाँ पर निम्नलिखित यन्त्रों का विवेचन प्राप्त होता है-

1. शंकुयन्त्र 2. यष्टियन्त्र 3. धनुषयन्त्र 4. चक्रयन्त्र 5. तोययन्त्र 6. मयूर यन्त्र 7. नर यन्त्र 8. वानर यन्त्र।

सूर्यसिद्धान्त में इन यन्त्रों का निर्माण विधियों के साथ ही वेध के प्रकारों का भी उल्लेख है। उदाहरण स्वरूप 'तोय यन्त्र' को बनाने की विधि इस प्रकार है – अभीष्ट माप का एक ताम्र पात्र लेकर उसके तल में एक छिद्र करें। वह छिद्र इस तरह बनावें कि जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र के उस छिद्र से पानी निकलता हुआ एक घण्टे या एक दिन में अथवा निश्चित समयावधि का ज्ञान तथा अनुपात से मध्यकालिक समय का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है। समय ज्ञान में प्रयुक्त जल के कारण ही इसका नाम तोययन्त्र या जल यन्त्र, कपाल के समान आकृति होने के कारण कपाल यन्त्र तथा घटयात्मक काल का बोध होने से इसका नाम घटीयन्त्र है।

वसिष्ठ सिद्धान्त में वेधसिद्ध तिथि-नक्षत्रादि के निर्णय को ही स्वीकार करने का निर्देश मिलता है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।

दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्।।

आर्ष ग्रन्थों के उपरान्त प्रसिद्ध खगोलवेत्ता तथा वेध-निपुण आचार्य आर्यभट्ट (४९९ ई0) हुये। इन्होंने वेध परम्परा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर कई खगोलीय सिद्धान्त प्रतिपादित किये। इनके द्वारा प्रयोग में लिये यन्त्रों में से गोल यन्त्र का स्वरूप निम्नवत् है –

पूर्वापरमध उर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरंचैव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ।।
पूर्वापरादिग्लग्नं क्षितिजाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धी यत्र दिवसनिशो:।।
काष्ठमयं समवृत्तं समन्तत: समगुरूं लघुं गोलम्।
पारदतैलजलैस्तं भ्रमयेत् स्वधिया च कालसमम्।।

ज्योतिर्विज्ञान के तीनों स्कन्धों में समान अधिकार रखने वाले विख्यात दैवज्ञ वराहमिहिर ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ पंचसिद्धान्तिका में अनेक यन्त्रों का विस्तार से वर्णन किया है। शंकु अथवा दण्ड से ध्रुव का वेध निर्दिष्ट करते हुए शंकु के अग्र भाग से इच्छित स्थान के अक्षांश आदि का ज्ञान भी उन्होंने प्रतिपादित किया है। मुख्य रूप से उन्होंने जलघटीयन्त्र के द्वारा समय ज्ञान का नूतन आविष्कार किया है। उनके द्वारा निर्मित मीनार के समान वेधशाला आज भी दिल्ली में स्थित है।

आचार्य लल्ल (५५०-६२५ ई0) ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ 'शिष्यधीवृद्धिदम्' ग्रन्थ में बारह प्रकार के यन्त्रों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। जैसे –

गोलो भगणश्चक्रं धनुर्घटीशंकुशकटकर्त्रय:।
पीठकपालशलाका द्वादशयन्त्राणि सह यष्टया।।

आचार्य द्वारा विवेचित यन्त्रों के नाम इस प्रकार हैं –

1. गोल यन्त्र 2. भगणयन्त्र 3. चक्रयन्त्र 4. धनुर्यन्त्र 5. घटीयन्त्र
1. शंकुयन्त्र 7. शकटयन्त्र 8. कर्तरीयन्त्र 9. पीठयन्त्र 10. कपालयन्त्र
11. शलाकायन्त्र 12. यष्टियन्त्र

खगोल एवं सिद्धान्तज्योतिष के वैश्विक स्तर पर उद्भट विद्वान आचार्य ब्रह्मगुप्त (शक ५१८) का नाम आज भी सम्मान से लिया जाता है। इन्होंने प्रतिदिन यन्त्रों से वेध करने हेतु निर्देश दिये हैं। आपके मत से प्रामाणिक रूप से दृग्गणित साधन करने के लिये अहर्निश वेध करना नितान्त आवश्यक है। आपका मत है कि –

तन्त्रभ्रंशे प्रतिदिनमेव विज्ञाय धीमता यत्न:।

कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति।।

आचार्य श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर ग्रन्थ में अनेक वेधयन्त्रों व वेध विधियों पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं –

गोलश्चक्रं कार्मुकं कर्तरी च।
कालज्ञाने यन्त्रमन्यत् कपालम्।।
पीठं शंकु: स्याद्घटीयष्टिसंज्ञम्।
गन्त्रीयन्त्राण्यत्र दिक्सम्मितानि।।

उनके द्वारा निर्देशित वेधयन्त्र निम्न है –

१. गोलयन्त्र २. चक्रयन्त्र ३. कार्मुकयन्त्र ४. कर्तरीयन्त्रम् ५. कपालयन्त्र ६. पीठयन्त्र ७. शंकुयन्त्र ८. घटीयन्त्र ९. यष्टियन्त्र १०. गन्त्रीयन्त्र।

आचार्य श्रीपति ने वेधयन्त्रों के निर्माण की विधियों पर भी प्रकाश डाला है। घटीयन्त्र के निर्माण के प्रसंग में वे लिखते हैं कि –

शुल्वस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत्
षडंगुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।।
तदम्भसा षष्टिपलै: प्रपूर्य।
पात्रं घटार्थप्रमितं घटी स्यात्।।
सत्रयंशमाषत्रयनिर्मिता या
हेम्न: शलाका चतुरंगुला स्यात्।।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं।
प्रपूर्यते नाडिकयाऽम्बुना तत्।।

सिद्धान्त ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्य भास्कराचार्य जी ने यात्रा, विवाह, मांगलिक कार्य, उत्सव तथा जातकीय कार्यों में वेधसिद्ध ग्रहगणित द्वारा ही प्रत्यक्ष फलप्राप्ति के कारण वेधकर्म की अनिवार्यता प्रतिपादित की है। वेधकर्म की आवश्यकता के कारण ही उन्होंने स्वतन्त्र रूप से यन्त्राध्याय में विविध यन्त्रों के निर्माण तथा उनके वेध प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके मत से दिन-रात्रि के काल मान की इकाईयों का यथार्थ ज्ञान यन्त्रों के बिना असम्भव रहता है। सिद्धान्तशिरोमणि में अनेक प्राचीन एवं नवीन आविष्कृत यन्त्रों का प्रतिपादन उन्होंने किया है। इनका वर्णन इस प्रकार हैं –

गोलो नाडीवलयं यष्टि: शंकुर्घटीचक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकम्पारमार्थिकं यन्त्रम्।।

ये यन्त्र हैं - १. गोल यन्त्र २. नाड़ीवलय यन्त्र ३. यष्टियन्त्र ४. शंकुयन्त्र ५. घटीयन्त्र ६. चक्रयन्त्र ७. चापयन्त्र ८. तुरीय यन्त्र ९. फलकयन्त्र १०. धीयन्त्र।

जल, स्थल व आकाशवर्ति पदार्थों का वेध करने के लिए भास्कराचार्य ने पारे की सहायता से 'स्वयंवह' नामक एक नवीन यन्त्र का भी आविष्कार किया है। उसका निर्माण प्रकार इस प्रकार है –

लघुदारूजसमचक्रे समसुषिरारा: समान्तरा नेम्याम्।
किंचिद्वक्रा योज्या: सुषिरस्याध: पृथक् तासाम्।।
रसपूर्णे तच्चक्रं द्वायाधाराक्षस्थित स्वयं भ्रमति।

वेधकर्म में निपुण गोलवेत्ता विद्वान् महेन्द्रसूरी ने 'यन्त्रराज' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में उन्होंने यन्त्रराज नामक यन्त्र के निर्माण की विधि तथा उससे समस्त वेधविधान का विस्तृत विवेचन किया है। समस्त वेधकार्य व गोलीय पदार्थों का यथार्थ परिज्ञान अकेले इस यन्त्र से हो जाने के फलस्वरूप ही इसका नामकरण यन्त्रराज किया गया है। यन्त्रराज की सहायता से महेन्द्रसूरी ने सूर्य की परमक्रान्ति २३/४५ तथा वार्षिक अयन गति ५४ विकला सिद्ध की है जो वर्तमान में भी प्रामाणिक रूप से स्वीकृत है।

पद्मनाभाचार्य (शक १३२०)ने वेधयन्त्रों पर आधारित प्रसिद्ध 'नलिकायन्त्राध्याय:' ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का ही अन्य नाम 'ध्रुवभ्रम:' है। आकाशीय पिण्डों की गतिविधयों व गणनाओं का ज्ञान विविध यन्त्रों व प्रकारों से इसमें विवेचित हुआ है। रात्रि में ध्रुवतारे के दर्शन से उसी दिशा व उन्नति के आधार पर अभीष्ट स्थान के दिग् देश व काल के निर्धारण का विधान भी यहाँ विवेचित हुआ है।

लब्धप्रतिष्ठित'विश्राम' नाम के आचार्य (शक १५३७) ने 'यन्त्रशिरोमणि' ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसमें उन्होंने छ: प्रकार के यन्त्रों की रचना करते हुए उनसे वेध करने का प्रकार प्रतिपादित किया है। वे यन्त्र हैं –

1. नर यन्त्र 2. जल यन्त्र 3. यन्त्रराज
4.चाप यन्त्र 5. तुरीय यन्त्र 6. नलिका यन्त्र

ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य गणेश दैवज्ञ (ई. १५०२) ने वेध और अनुसन्धान के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित किये। उनके द्वारा आविष्कृत प्रतोदयन्त्र एक महनीय यन्त्र है। इसके निर्माण की दिशा में उन्होंने इसी नाम से एक ग्रन्थ की रचना भी की है। प्रतोदयन्त्र से अत्यल्प समय में ही काल का सूक्ष्मज्ञान सम्भव है। इसका रचना प्रकार निम्न है –

गणेशोदितं यन्त्रमेतत्प्रतोद

मनायासकालावबोधं प्रवच्मि।
निजेच्छावशादिष्टदैर्ध्य: सुदण्डो
ऽनितस्थूलक: शिंशिवृक्षादिजात:।।
परात्पाहमानापरद्युप्रमाणं यया संख्यया तत्प्रमित्यस्रकै: स:।
समस्थान दैर्घ्यो विधेयोऽस्य शीर्षे, सदा श्रृंखला धारणार्थं नियोजया।।
आधारतोऽध: परित: समस्य दैर्घ्यादिभागे नरवेशनार्थम्।
छिद्राणि कार्याणि तथा यथाऽत्र स्पृष्टानि गर्भे न भवन्ति तानि।।
शीर्षे छिद्रं गर्भमध्ये विधेयमाधारान्ते शंकुलोपार्थमस्मिन्।
पूर्वच्छिद्राद् बाह्यत: शंकुमानं यन्त्रांगाशासन्नमेवं नर: स्यात्।।
बाह्यस्थ शंक्कर्क लव: प्रतोदयन्त्रे भवेदंगुलमानमस्मिन्।
पूर्वोक्तरीत्येष्टघटीनतांशोन्नतांशजीवे सुधिया प्रसाध्ये।।
सूर्यघ्न्युन्नत लव मौर्विका नतज्यासंभक्ताभिमतघटीभवांगुलानि।
एकाद्रिष्वभिमतनाडिकोन्नतेषु रन्ध्रात् स्वांगुलकमिति: समस्थलेऽङ्क्या।।
स्वाहर्मान समस्थलस्य सुषिरे शंकुर्निधेयस्तथा।
यन्त्रे श्रृंखलिकाधृते पतति तद्भा तत्समस्थानके।।
छायाग्रावधि रन्ध्रतश्च गणयेन्नाडी: दिनाद्यार्धके।
याता: शेषमिता: परत्र यदि भा मध्येऽनुपातो भवेत्।।
दण्डो भूमिस्तत्र सूर्योदयो स्याद्भाऽभावो भाऽनन्तरूपा खमध्ये।
तस्या: दृग्ज्याशंकोनृरूप दृग्ज्यातो भायामंगुलान्युक्तरीत्या।।

इस प्रकार गणेशदैवज्ञ ने प्रतोदयन्त्र की रचना कर उससे प्राचीन आचार्यों के मतों का प्रतयक्ष अवलोकन कर, उनकी सत्यता की परीक्षा कर, आये हुए शैथिल्य व अन्तर को संशोधित कर, सुस्पष्ट काल का निर्णय कर अपना मत दृढ़ता से प्रतिपादित किया।

आचार्य गणेश दैवज्ञ ने एक और यन्त्र 'सुधीरंजन' का भी आविष्कार किया था, उसके निर्माण की दिशा में वे लिखते हैं –

यन्त्रं कुर्याद्धातुजं दारूजं वा।
पट्याकारं दैर्घ्यतस्त्वेकहस्तम्।।
दैर्ध्येऽत्राङ्कया: षष्टिभागा: समाना:।
कस्मिंश्चिद्वाप्यत्र यन्त्रस्य कुक्षौ।।

इनके अतिरिक्त भी आर्यभट्ट (ई0 ४९९) ने आर्यभट्टीय ग्रन्थ में, ज्ञानराज ने (ई0 १५०३) सिद्धान्तसुन्दर में, मुनीश्वर ने सिद्धान्तसार्वभौम में, आचार्य मथुरानाथ ने यन्त्रराजघटना में, चिन्तामणि दीक्षित ने गोलानन्द में, आचार्य कमलाकर (ई. १६१६) ने सिद्धान्ततत्वविवेक में और इससे भी अधिक अन्य आचार्यों ने भी अनेक वेधयन्त्रों का निर्माण एवं वेध प्रकारों का विस्तार से विवेचन किया है। तुरीययन्त्र की रचना के सन्दर्भ में आचार्य कमलाकर लिखते हैं –

उर्ध्वाधरा तथा तिर्यग्रेरखा चक्रस्य मध्यगा।
कार्या चक्राङ्घयस्ताभ्यां चत्वार: स्यु: समा इह।।
तदेकाङ्घ्रिस्वरूपाच्च यन्त्रादेव यथा भवेत्।
ज्ञानं दिग्देशकालानां तथा सूक्ष्मं वदाम्यहम्।।

खगोलीय वेध परम्परा के उन्नायक, सिद्धान्त ज्योतिष के युग प्रवर्तक तथा महान ज्योतिर्वेता जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (द्वितीय) का नाम वेधपरम्परा में युगन्धर के रूप में आदरपूर्वक लिया जाता है। महाराजा ने लोकोपकार की दिशा में जन साधारण में ज्योतिष के प्रति रूचि उत्पन्न करने, ज्योतिष के आचार्यों व शोधकर्ताओं तथा जिज्ञासुओं को मानसिक भोजन उपलब्ध कराने के क्रम में प्राच्य व पाश्चात्य विद्वानों के सहयोग से श्रमपूर्वक भारतवर्ष के पाँच विशिष्ट महत्व वाले सांस्कृतिक महानगरों में वेधशालाओं की स्थापना कर उनमें वेधयन्त्रों का निर्माण कराया। समय-समय पर चूने से निर्मित इन यन्त्रों के नष्ट होने व विकृत होने के कारण नया स्वरूप प्रदान किया गया है। इस प्रकार से यन्त्र आज भी सूक्ष्म व प्रामाणिक फल देने में सक्षम है।

अभ्यास प्रश्न–

1. निम्न में 'सूर्यसिद्धान्त' है –
   क. आर्षग्रन्थ ख. भगवान सूर्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ ग. सूर्य-मयासुर संवाद रूपी ग्रन्थ घ. उपर्युक्त सभी
2. आर्य सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन है?
   क. आर्यभट्ट ख. वराहमिहिर ग. भास्कराचार्य घ. गणेश दैवज्ञ
3. सिद्धान्तसुन्दर किसकी रचना है?
   क. ज्ञानराज ख. मुनीश्वर ग. मथुरानाथ घ. आर्यभट्ट
4. 'यन्त्रशिरोमणि' के लेखक कौन है?
   क. मुनीश्वर ख. विश्राम ग. मथुरानाथ घ. लल्ल
5. दिन-रात्रि के काल मान की इकाईयों का यथार्थ ज्ञान किसके द्वारा सम्भव है?

क. यन्त्रों के द्वारा ख. ग्रहों के द्वारा ग. वेध के द्वारा घ. कोई नहीं

6. जल, स्थल व आकाशवर्ति पदार्थों का वेध करने के लिए भास्कराचार्य ने किस यन्त्र का निर्माण किया था?

क. तुरीय यन्त्र ख. स्वयंवह यन्त्र ग. नाड़ी यन्त्र घ. गोल यन्त्र

वेधपरम्परा के अन्तर्गत ही सम्प्रति राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त स्व. पं. कल्याण दत्त शर्मा जी का नाम अग्रगण्य है। जयपुरस्थ वेधशाला में अधीक्षक पद पर सेवायें दे चुके आचार्य जी ने समग्र देश में अनेक स्थानों पर वेधशालाओं का निर्माण कराया है। आपके द्वारा श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नईदिल्ली, शांतिकुंज हरिद्वार, गलतातीर्थ जयपुर, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में स्थापित वेधशालायें परम प्रामाणिक व सुसूक्ष्म दृग्गणित के उपयुक्त हैं। आपके द्वारा जगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर में भी वेधशाला के निर्माण कार्य में योगदान दिये गये हैं।

आइये अब हम विविध यन्त्रों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं। क्रमवार प्रमुख यन्त्रों का परिचय इस प्रकार हैं -

1. **चक्र यन्त्र** - ध्रुवतारें की ओर उन्मुख होता हुआ, यह यन्त्र धातु से बनाया जाता है। यह वृत्ताकार परिधिस्वरूप होता है। इसकी परिधि में ३६० अंश अंकित किये जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक अंश में १०-१० कलाओं के विभाग भी अंकित कर दिये जाते हैं। वृत्त के केन्द्र में एक वेधपट्टिका को व्यास रेखा के समान नलिका से लगाकर स्थापित करते हैं। इसको घुमाने से प्रत्येक वृत्त के दक्षिण में कोण से नीचे साठ घड़ी अंकित आधार वृत्त बनाते हैं। इसी प्रकार पूर्व में कहे भाग से ही दक्षिण में एक छिद्र बनाते हैं। इस छिद्र में आधार वृत्त को स्पर्श करती हुई सुई के आकार की आधारवृत्त की ही वेधपट्टिका स्थापित कर उसी से ग्रहों का वेध किया जाता है।

2. पूर्व कपाली यन्त्र– यह यन्त्र कपाल के समान आकार का होता है। गोलीय दृष्टि से खगोल को याम्योत्तर वृत्त से विभाजित करने पर खगोल के दो भाग हो जाते हैं। इनमें प्रथम पूर्व दिशा के खगोलार्द्ध को बताने वाला पूर्वकपालीयन्त्र तथा पश्चिम दिशा वाले खगोलार्द्ध के रूप में पश्चिम कपाली यन्त्र होता है। पूर्वदिशा में प्रयुक्त कपालीयन्त्र से पूर्वभाग वाले खगोलार्द्ध के पदार्थों का सहजता से परिज्ञान हो जाता है। गोलीय क्षेत्रों, स्थितियों, अक्षक्षेत्रों व ग्रहादि का ज्ञान इस यन्त्र से होता है। इसके द्वारा वेध प्रकार आदि का ज्ञान पश्चिम यन्त्र के समान ही समझना चाहिये।

3. पश्चिम कपाली यन्त्र - पश्चिम कपाल यन्त्र की वृत्ताकार परिधि में ३६० अंश लिखे जाते हैं।

वस्तुत: यही हमारा क्षितिजवृत्त होता है। इसके उपरान्त ६-६ अंशों के अन्तर से क्रमश: दक्षिणध्रुवस्थान, नाड़ीवृत्त विषुवद्वृत्त, बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त, दक्षिणोत्तरवृत्त, समवृत्त और नतांशवृत्त अंकित किये जाते हैं। उसी प्रकार इस यन्त्र में दोनों ध्रुवों पर गया हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त, खस्वस्तिक से क्षितिज पर्यन्त दृग्वृत्त तथा क्रान्तिवृत्त इत्यादि स्थापित किये जाते हैं। कपालीयन्त्र में चारों दिशाओं के बिन्दुओं पर से लोहे के तारों से बांधी हुई चतु:सूत्री स्थापित करते हैं। इन तारों में से एक सीधा तार पूर्व तथा पश्चिम दिग्बिन्दुओं से तथा दूसरा तार उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दुओं से बांधा जाता है। जहाँ से दोनों तार मध्य में एक स्थान पर मिलते हैं, वहाँ एक लोहे या ताँबे का गोल पत्र बांध दिया जाता है, जिसके मध्य में एक छेद भी होता है।

4. राम यन्त्र–रामयन्त्र दो भागों में बनाया जाता है। इसके एक भाग में जहाँ कलिका समान पट्टिका बनी होती है, उस स्थान पर दूसरे भाग में रिक्त स्थान होता है और इसी प्रकार दूसरे भाग में जानना चाहिये। इस रिक्त स्थान में खड़े होकर गोलीय पदार्थों का भली-भाँति वेध किया जाता है। रामयन्त्र के ठीक मध्य में एक लोहे का शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु का मूलभाग अध: खस्वस्तिक के नाम से जाना जाता है। यन्त्र का ऊपरी गोलाकार परिधि स्वरूप भाग उस स्थान का स्पष्ट क्षितिज वृत्त होता है। इस क्षितिज वृत्त से शंकु के मूल भाग तक ९० अंश उट्टंकित कर दिये जाते हैं। इन अंशों से नतांश व उन्नतांश का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर बिन्दु से ३६० अंश तथा कुछ स्थूल कलाएं भी टंकित की जाती हैं। इनसे दिगंश का ज्ञान किया जाता है।

5. दिगंश यन्त्र - एक-दूसरे के मध्य में विद्यमान तीन गोलाकार समानान्तरित भित्तियों के रूप में इस यन्त्र की रचना की जाती है। इस यन्त्र की तीनों भित्तियों का विवेचन निम्नलिखित है-

प्रथम भित्ति – यन्त्र के मध्य भाग में शंकु भित्ति के रूप में यह प्रथम भित्ति होती है। इसके केन्द्र में सूत्र बांधने की दृष्टि से छिद्र सहित एक शंकु भी होता है।

द्वितीय भित्ति – प्रथम एवं तृतीय भित्ति के मध्य में स्थित यह द्वितीय भित्ति इस यन्त्र में प्रमुखता से निर्मित की जाती है।

तृतीय भित्ति – इन दोनों भित्तियों से दुगुनी ऊँचाई पर उन्हीं के समानान्तरित बाहरी भाग में यह तृतीय भित्ति बनाई जाती है।

इन भित्तियों में ३६० अंश तथा स्थूल रूप से कलाएँ अंकित की जाती हैं। साथ ही बाहरी भाग में स्थित सबसे ऊँची भित्ति पर एक चतु:सूत्री स्थापित की जाती है, जिसके मध्यभाग में छिद्र सहित एक लोहे का पत्र बाँधा जाता है।

6. जयप्रकाश यन्त्र - रामयन्त्र के समान ही जयप्रकाश यन्त्र भी विशालकाय तथा दो भागों में

बनाया जाता है। इसके परस्पर पूरक दोनों भागों को मिलाकर ही इस यन्त्र की पूर्णता सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि इसके प्रथम भाग में जहाँ पत्थर की कलियाँ बनी होती हैं, उस स्थान पर द्वितीय भाग में रिक्तता रहती है तथा प्रथम भाग में जहाँ रिक्तता होती है, उस स्थान पर द्वितीय भाग में कलियाँ बना दी जाती हैं। यह रिक्त स्थान वस्तुत: ज्योतिषियों अथवा वेधकर्ता जिज्ञासुओं के आवागमन व वेध के सहज ज्ञान के लिए बनाया जाता है। यहाँ खड़े होकर गणितकर्ता अपनी गणित की शुद्धता का परीक्षण तथा ग्रहों का प्रत्यक्षत: वेध करता है।

इस यन्त्र के दोनों ही भागों का जो उर्ध्व प्रदेश होता है, वह वृत्ताकार भाग ही क्षितिजवृत्त कहलाता है। इस वृत्त में ३६० अंश लिख देने चाहिये। यन्त्र के दक्षिण भाग में अभीष्ट स्थान के अक्षांशों के समान स्थान पर क्षितिज से नीचे की ओर ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। वृत्त के केन्द्र स्थान को अध: खस्वस्तिक कहा जाता है। यहीं पर पूर्व पश्चिम अध: खस्वस्तिकों पर गया हुआ समवृत्त भी अंकित कर देना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर ध्रुवों के मध्य खस्वस्तिक से होकर गया हुआ दक्षिणोत्तरवृत्त उट्टंकित करें। पूर्व एवं पश्चिम दिग् बिन्दुओं से लगा हुआ तथा अध: खस्वस्तिक से उत्तर दिशा में अक्षांशों के समान अन्तर से नाड़ीवृत्त का निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार नाड़ीवृत्त से समानान्तरित स्थूल रूप से कुछ छोटे आकार के अहोरावृत्त भी बना देने चाहिये। मुख्यतया छ: अहोरात्रवृत्त तो होने ही चाहिये जो द्वादश राशियों का निर्देश करने वाले होते हैं। इनमें से तीन अहोरात्रवृत्त नाड़ीवृत्त से उत्तर दिशा में तथा तीन वृत्त उससे दक्षिण दिशा में बनाने चाहिये। सूक्ष्मता की दृष्टि से इन अहोरात्र वृत्तों की संख्या ३६० अंश या इससे अधिक भी हो सकती है।

7. षष्ठांश यन्त्र - मध्याह्नकाल में सूर्य के नतांश-उन्नतांश व क्रान्त्यादि जानने के लिए षष्ठांश यन्त्र की रचना की जाती है। कक्ष का निर्माण कर उसमें इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। कक्ष के दक्षिणी भाग की दीवार पर पूर्व और पश्चिम दिशा के कोणों से एक अधोमुखी अर्द्धगोलाकार आकृति का निर्माण किया जाता है। यह आकृति सफेद चूने या रंग से बना सकते हैं। इस आकृति में अंश कला व स्थूल विकलादि का अंकन किया जाता है। जिस स्थान पर से इन वृत्त खण्डों पर अंशादि का अंकन आरम्भ किया गया हो, उस बिन्दु के दोनों ओर अध: खस्वस्तिक का निर्माण करना चाहिये। दोनों बिन्दुओं के ऊपर कक्ष के उपरी भाग में छत में दो छिद्र किये जाते हैं। ये दोनों छिद्र ही षष्ठांश यन्त्र में वेध में प्रयुक्त होने वाले मुख्य उपकरण हैं।

8. दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र– याम्योत्तर रेखा पर ध्रुवाभिमुख इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। भित्ति या सीधी दीवार के समान निर्मित इस यन्त्र की पूर्व दिशा एवं पश्चिम दिशा की ओर वेध के उपयोगी चिह्न एवं उपकरण स्थापित किये जाते हैं। इस यन्त्र के पूर्वी भाग से वेध की क्रिया की जाती

है।

9. नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र–नाड़ीवलय का यह भाग दक्षिण दिशा की ओर झुका हुआ रहता है। इस नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक लोहे का शंकु लगा दिया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु को केन्द्र मानकर इससे वृहद्वृत्त, समवृत्त और लघुवृत्तों का निर्माण किया जाता है। इन वृत्तों में उर्ध्व- अधो रेखा तथा तिर्यक् रेखा बना दी जाती है। महद् और लघु इन दो वृत्तों में घण्टा, मिनटादि समय का उल्लेख कर दिया जाता है तथा तीसरे मध्यमाकार वाले वृत्त में नतघटी के चिह्न लगा दिये जाते है। इस प्रकार वृत्तों में चिह्न अंकित करने के पश्चात् यह यन्त्र वेध प्रयुक्त हो जाता है।

10. नाड़ीवलय उत्तर गोल यन्त्र– नाड़ीवलय यन्त्र का उत्तरी भाग ही नाड़ीवलय उत्तरगोल यन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र से उत्तरगोलीय ग्रहों व नक्षत्रों का वेध किया जाता है। इस यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित किया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु से एक वृहद् वृत्त की रचना की जाती है। इस वृहद् वृत्त में घण्टा, मिनटादि समय का लेखन कर दिया जाता है।

11. दिगंश यन्त्र सहित पलभायन्त्र (धूपघटी)–पलभा यन्त्र में केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित कर दिया जाता है। यन्त्र की परिधि में ३६० अंश अंकित कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार वही समय जानने के लिए यहाँ ३० घटिकायें अथवा घण्टा, मिनटादि अंकित कर दिये जाते हैं।

12. क्रान्तिवृत्त यन्त्र - क्रान्तिवृत्त का निर्माण ध्रुव की ओर अभिमुख करते हुए पत्थर से किया जाता है। ६० घट्यात्मक तथा स्थूल रूप से पलाओं के सहित इसका निर्माण किया जाता है। इसके निचले भाग में एक बिन्दु बनाया जाता है। इस यन्त्र में यह बिन्दु ही वेध के समय मुख्य होता है। इस यन्त्र के मध्य भाग में केन्द्र स्थान पर लोहे का एक शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु को घुमाने पर धातु से निर्मित दो वृत्त एक स्थान पर सम्मिलित आकार के हो जाते है।इस सम्मिलन स्थान से पुन: क्रमश: उनके अन्तर में वृद्धि होती जाती है तथा सम्मुख होने पर उनमें परम अन्तर हो जाता है। इनके परम अन्तर पर एक धातु निर्मित पट्टिका लगा देनी चाहिये। यह वेध पट्टिका वेध के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस वेध पट्टिका के दोनों भागों में दो तुरीय यन्त्र बना दिये जाते हैं। इनके माध्यम से ग्रहों का स्पष्टीकरण व शर इत्यादि का साधन किया जाता है।

13. यन्त्रराज– यन्त्रों में अत्यधिक महत्व तथा समस्त खगोलीय घटनाओं को इस एक ही यन्त्र द्वारा वेध कर सकने की योग्यता के कारण ही इसे 'यन्त्रराज' कहा गया है। यह धातु से बनाया हुआ होता है तथा कील में पिरोकर सभी दिशाओं में घूमता हुआ रखकर उसे लटकता हुआ रखा जाता है। यन्त्र के मध्य में गोलाकार क्षेत्र में ३६० अंश अंकित करने चाहिये। इसकी एक घड़ी ६ अंशों की

जाननी चाहिये। इसमें एक रेखा उर्ध्व – अध: तथा एक तिरछी रेखा बनानी चाहिये। इस यन्त्र को इस प्रकार स्थापित करें कि जब हम इस यन्त्र के सामने रहें तो हमारी बाईं ओर पूर्व दिशा, दाईं ओर पश्चिम दिशा, उर्ध्व- अधो रेखा में उपरी भाग में दक्षिण दिशा तथा नीचे की ओर उत्तर दिशा होनी चाहिये। इस यन्त्र को स्थिर करके इसमें सिद्धान्त ग्रन्थों में बतायी विधियों से नक्षत्रों के साथ सप्तर्षि, प्रजापति, लुब्धक, अगस्त्य आदि तारों के वेध स्थानों के नामों का भी उल्लेख वहाँ कर देना चाहिये। यन्त्र में क्षितिज वृत्त बनाकर उसमें ९० उन्नतांश वृत्तों को बनाना चाहिये। इसी प्रकार इस यन्त्र में नाड़ीवृत्त, कर्कराशिवृत्त, समवृत्त, दिगंशवृत्त तथा होरावृत्त आदि को भी यथास्थान चिह्नित कर देना चाहिये। यन्त्रराज के महद्वृत्त के केन्द्र स्थान में ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। इसके उपर अत्यधिक भार से युक्त भ्रमणशील क्रान्तिवृत्त भी संलग्न कर देना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बारह राशियाँ भी अंशों के साथ टंकित करनी चाहिये। इस केन्द्र में ही हमारे लिये वेध कार्य में उपयोगी धातु से बनी हुई वेधपट्टिका स्थापित करनी चाहिये। इस यन्त्र के द्वारा तात्कालिक समय का ज्ञान, लग्न, दशमलग्न इत्यादि का साधन, ग्रहस्पष्टीकरण, ग्रहण व नक्षत्र दर्शन तथा समस्त प्रकार की गोलीय गतिविधियों का ज्ञान आसानी से पलक झपकते ही किया जा सकता है।

14. उन्नतांश यन्त्र - यन्त्रराज के समान ही उन्नतांश यन्त्र भी बड़े आकार में उपयोगी बनाया जाता है। यह यन्त्र धातु से बना हुआ चारों दिशाओं में घुमा सकने वाला तथा कील या दण्ड के सहारे लटकता हुआ स्थिर किया जाना चाहिये।

15. राशिवलय यन्त्र - जयपुर की वेधशाला में वृहत् सम्राट यन्त्र के पश्चिमी भाग में द्वादश राशियों के यन्त्र बने हुए हैं। इनका स्वरूप प्रामाणिक है तथा इनसे सूक्ष्मता से वेध कर परिणाम जाने जा सकते हैं। राशिवलय यन्त्रों से सायन ग्रहों का स्पष्टीकरण तथा शर इत्यादि का साधन किया जाता है। इन यन्त्रों की यह विशेषता है कि एक राशिवलय यन्त्र एक अहोरात्र में एक बार ही प्रयोग में आता है। राशिवलय यन्त्र का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि जिससे सायन राशि का प्रारम्भिक चिह्न जब दक्षिणोत्तर वृत्त में लगता है तब उस राशि का सायन दशम लग्न होता है। उसी समय वह राशियन्त्र वेध के लिए उपयोगी होता है।

16. सम्राट यन्त्र– सम्राट यन्त्र विशाल आकार में पत्थरों से बनाया जाता है। इसकी रचना विषुवद्वृत्तीय धरातल पर की जाती है। विषुवदवृत्तीय धरातल पर दक्षिणोत्तरवृत्त के सामने इस यन्त्र को बनाया जाता है। सर्वप्रथम वहाँ एक शंकुभित्ति का निर्माण किया जाता है। इसकी उन्नति उत्तर में (जयपुर या उत्तरी गोल वाले देशों में) अक्षांश के बराबर रखी जाती है। उसकी पाली में दृष्टि लगाकर शंकु के अग्रभाग पर देखने से ध्रुवतारा दिखाई देता है।

शंकुभित्ति पर सीढ़ियाँ भी बनानी चाहिये, जिससे कि दिन व रात्रि में यथासमय ग्रहों की स्थिति, क्रान्ति, शर, नतांश, उन्नतांश आदि को सूक्ष्मता से जानने के लिए शंकुभित्ति के दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम वृत्त चतुर्थांश बना देने चाहिये। इनमें भी पूर्व दिशा की ओर वृत्तचतुर्थांश तथा पश्चिम दिशा की ओर पश्चिम वृत्तचतुर्थांश बनाना चाहिये। तिर्यक् बनाए हुए वृत्त चतुर्थांशों की उपरी पाली को उर्ध्वपाली तथा नीचे पाली को अधोपाली नाम दिया जाता है। इस वृत्त पाली में १२ घण्टों के चिह्न मिनटों के संकेत देते हुए बनाने चाहिए। इन वृत्त चतुर्थांशों से समय का ज्ञान किया जा सकता है। जैसे कि मध्याह्न से पूर्व समय जानने के लिए पश्चिम वृत्तचतुर्थांश तथा मध्याह्न के पश्चात् समय जानने के लिए पूर्ववर्ती वृत्तचतुर्थांश उपयुक्त रहता है।

सम्राट यन्त्र में स्थानीय याम्योत्तरवृत्त पर बनाई गई दक्षिणोत्तर भित्तिरूपा शंकुपाली कहलाती है। इस पर मध्य स्थान से परमक्रान्तितुल्य अंशादि मान को लिख देना चाहिए। लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उर्ध्व बिन्दु से नीचे की ओर शंकुपाली पर दक्षिण क्रान्ति को जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए तथा निम्न बिन्दु से उपर की ओर उत्तराक्रान्ति जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए।

17. वृहत् सम्राट यन्त्र -ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

18. अग्रा यन्त्र–सूर्योदय का समय जानने, सूर्य की दैनिक गति पता लगाने और पूर्व स्वस्तिक से अभीष्ट अहोरात्रवृत्त के अन्तर के समान अग्रा का स्पष्टमान साधन करने के लिए अग्रा यन्त्र का निर्माण किया गया है। शंकु के अग्रभाग में समय आदि जानने के लिए अंशादिभाग तथा मिनटादिभाग लिख दिये जाते हैं। सायन मेष और तुला राशियों के प्रारम्भिक चिह्न पर (२१ मार्च व २३ सितम्बर को) भगवान सूर्य नाड़ी वृत्त में ही विचरण करते हैं। इन दिनों में प्रात: ६ बजे शंकु की छाया पश्चिम भाग में पड़ेगी। इसके अतिरिक्त दिनों में अग्रा के समान अन्तर के तुल्य उत्तर या दक्षिण में शंकु की छाया पड़ेगी। इस छाया से अग्रा के अंशों तथा तात्कालिक समय का पता लगाया जाता है।

19. शंकु यन्त्र -इस यन्त्र का निर्माण बाद में वेधशाला के अधीक्षक जी. एस. आप्टे जी ने मौलिक

चिन्तन के आधार पर कराया था। इससे दिक्, देश और काल का ज्ञान सरलता से किया जाता है। समतल भूमि पर दिगंश यन्त्र के समान बने इस यन्त्र के द्वारा सूर्य के सायन मेषादि राशियों में संक्रमण के समय को स्पष्टता से जाना जाता है।

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि प्रत्येक युग में स्वयं भगवान भास्कर ने महर्षियों को ज्योतिर्विज्ञान का उपदेश दिया है। वही ज्ञान सूर्यांशपुरूष ने मय को बताया। उनके संवाद स्वरूप आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में इस वेधपरम्परा का प्रामाणिक निर्देश प्राप्त होता है। ग्रहों की गति के कारण उनके दैनिक वेध करने तथा गणित से उनकी यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहा:।
प्रयान्ति तत् प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

प्रयोजन के साथ ही यहाँ पर विविध प्रकार के भगवान सूर्य के द्वारा बताए निम्नलिखित यन्त्रों का विवेचन प्राप्त होता है-

1. शंकुयन्त्र 2. यष्टियन्त्र 3. धनुषयन्त्र 4. चक्रयन्त्र 5. तोययन्त्र 6. मयूर यन्त्र 7. नर यन्त्र 8. वानर यन्त्र।

सूर्यसिद्धान्त में इन यन्त्रों का निर्माण विधियों के साथ ही वेध के प्रकारों का भी उल्लेख है। उदाहरण स्वरूप तोय यन्त्र को बनाने की विधि इस प्रकार है – अभीष्ट माप का एक ताम्र पात्र लेकर उसके तल में एक छिद्र करें। वह छिद्र इस तरह बनावें कि जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र के उस छिद्र से पानी निकलता हुआ एक घण्टे या एक दिन में अथवा निश्चित समयावधि का ज्ञान तथा अनुपात से मध्यकालिक समय का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है। समय ज्ञान में प्रयुक्त जल के कारण ही इसका नाम तोययन्त्र या जल यन्त्र, कपाल के समान आकृति होने के कारण कपाल यन्त्र तथा घटयात्मक काल का बोध होने से इसका नाम घटीयन्त्र है।

वसिष्ठ सिद्धान्त में वेधसिद्ध तिथि-नक्षत्रादि के निर्णय को ही स्वीकार करने का निर्देश मिलता है-

यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्।।

आर्ष ग्रन्थों के उपरान्त प्रसिद्ध खगोलवेत्ता तथा वेध-निपुण आचार्य आर्यभट्ट (४९९ ई0) हुये। इन्होंने वेध परम्परा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर कई खगोलीय सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

शंकु यन्त्र – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। इससे दिक्, देश तथा काल का ज्ञान भी सम्यक् रूप से किया जा सकता है।

दिगंश यन्त्र– गोल एवं वर्तुलाकार तीन भित्तियों के रूप में यह यन्त्र ग्रहों की दिशा व दशा जानने के लिए बनाया गया है।

क्रान्ति यन्त्र – सूर्य की स्थिति जानने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.घ 2. क 3. क 4. ख 5. क 6. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यन्त्र प्रयोजन का लेखन कीजिये।
2. भास्कराचार्य द्वारा प्रणीत यन्त्रों का वर्णन कीजिये।
3. दिगंश यन्त्र, शंकु यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र तथा सम्राट यन्त्र का परिचय दीजिये।
4. सूर्यसिद्धान्तोक्त यन्त्रों का उल्लेख कीजिये।
5. यन्त्रों का महत्व क्या है?

इकाई – 5 प्रमुख यन्त्रों का नाम व उपयोग

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रमुख यन्त्रों का परिचय
5.4 यन्त्रों का उपयोग
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सहायक पाठ्यसामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बीएजेवाईएन-350 के द्वितीय खण्ड की पांचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – प्रमुख यन्त्रों का नाम व उपयोग। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने वेधशाला, यन्त्र परिचय आदि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रमुख यन्त्र एवं उसके उपयोग से जुड़े विषयों का अध्ययन करने जा रहे है।

सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहवेध के लिए वेध-यन्त्रों की आवश्यकता होती है। हमारे ज्योतिष के आचार्यों ने कई प्रकार के यन्त्रों के बारे में बतलाया है। उन यन्त्रों में प्रमुख यन्त्र कौन-कौन से है तथा उनकी उपयोगिता क्या है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त हो जायेगा।

आइए इस इकाई में हम ज्योतिषोक्त प्रमुख यन्त्रों का नाम व उनके उपयोग को जानने का प्रयास करते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि प्रमुख यन्त्र कौन-कौन से है?
- समझ जायेंगे कि यन्त्रों की उपयोगिता क्या है?
- प्रमुख यन्त्रों की क्या विशेषता है?
- यन्त्रों के निर्माण का प्रयोजन क्या है?

5.3 प्रमुख यन्त्र

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। उन यन्त्रों में प्रमुखता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित यन्त्रों के नाम आते हैं –

शंकु यन्त्र, आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, कपाल यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र,दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशि वलय, धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र

यन्त्र।

आप क्षेत्र में शंकु यन्त्र को देख सकते है। सम्प्रति यह यन्त्र लगभग उन सभी संस्थानों में उपलब्ध हैं, जहाँ पारम्परिक रूप से ज्योतिष विषय का अध्ययन-अध्यापन होता है। इसके अतिरिक्त उज्जैन की वेधशाला, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की वेधशाला, जयपुर की वेधशाला आदि में भी वेधकार्य तथा शोधकार्य के लिए यह उपलब्ध है। इस यन्त्र का निर्माण बाद में वेधशाला के अधीक्षक जी. एस. आप्टे जी ने मौलिक चिन्तन के आधार पर कराया था। इससे दिक्, देश और काल का ज्ञान सरलता से किया जाता है। समतल भूमि पर दिगंश यन्त्र के समान बने इस यन्त्र के द्वारा सूर्य के सायन मेषादि राशियों में संक्रमण के समय को स्पष्टता से जाना जाता है। इस यन्त्र के माध्यम से पलभा का भी ज्ञान किया जाता है।

आधुनिककम्पासयन्त्रम्

आधुनिकनलिकायन्त्रम्

आप चित्र में आधुनिक कम्पास तथा नलिका यन्त्र को देख रहे होंगे। इस यन्त्र का उपयोग दिक् साधन (दिशाओं का ज्ञान) में किया जाता है। इस यन्त्र के माध्यम से व्यक्ति कहीं भी किसी दिशा में स्थित होकर वहाँ से दिशाओं का ज्ञान कर सकता है। इस यन्त्र में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण

दिशाओं के लिए प्रतीकात्मक E (EAST), W(WEST), N(NORTH), S(SOUTH) लिखा रहता है। जिससे स्पष्टतया दिशाओं का ज्ञान हो जाता है। आधुनिक कम्पास यन्त्र दिशा ज्ञान के लिए उत्तम यन्त्र माना जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इसका उपयोग दिशा ज्ञान के लिए करते हैं।

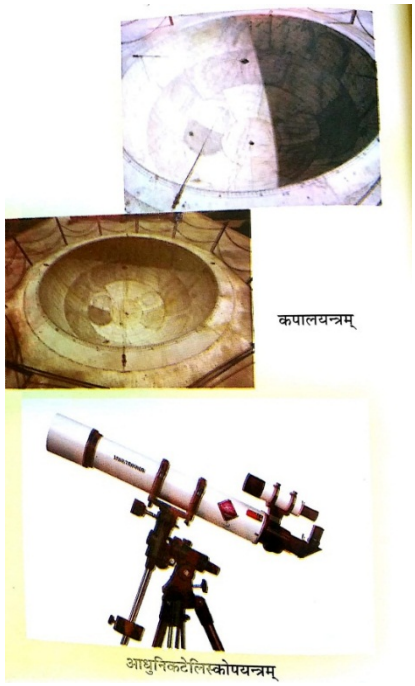

आप उपर के चित्र में कपाल यन्त्र को देख रहे होंगे। यह दो प्रकार का होता है – पूर्व कपाली तथा पश्चिम कपाली।

पूर्व कपाली यन्त्र– यह यन्त्र कपाल के समान आकार का होता है। गोलीय दृष्टि से खगोल को याम्योत्तर वृत्त से विभाजित करने पर खगोल के दो भाग हो जाते हैं। इनमें प्रथम पूर्व दिशा के खगोलार्द्ध को बताने वाला पूर्वकपालीयन्त्र तथा पश्चिम दिशा वाले खगोलार्द्ध के रूप में पश्चिम कपाली यन्त्र होता है। पूर्वदिशा में प्रयुक्त कपालीयन्त्र से पूर्वभाग वाले खगोलार्द्ध के पदार्थों का सहजता से परिज्ञान हो जाता है। गोलीय क्षेत्रों, स्थितियों, अक्षक्षेत्रों व ग्रहादि का ज्ञान इस यन्त्र से होता है। इसके द्वारा वेध प्रकार आदि का ज्ञान पश्चिम यन्त्र के समान ही समझना चाहिये।

पश्चिम कपाली यन्त्र - पश्चिम कपाल यन्त्र की वृत्ताकार परिधि में ३६० अंश लिखे जाते हैं। वस्तुत: यही हमारा क्षितिजवृत्त होता है। इसके उपरान्त ६-६ अंशों के अन्तर से क्रमश: दक्षिणध्रुवस्थान, नाड़ीवृत्त विषुवद्वृत्त, बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त, दक्षिणोत्तरवृत्त, समवृत्त और नतांशवृत्त अंकित किये जाते हैं। उसी प्रकार इस यन्त्र में दोनों ध्रुवों पर गया हुआ

ध्रुवप्रोतवृत्त,खस्वस्तिक से क्षितिज पर्यन्त दृग्वृत्त तथा क्रान्तिवृत्त इत्यादि स्थापित किये जाते हैं। कपालीयन्त्र में चारों दिशाओं के बिन्दुओं पर से लोहे के तारों से बांधी हुई चतु:सूत्री स्थापित करते हैं। इन तारों में से एक सीधा तार पूर्व तथा पश्चिम दिग्बिन्दुओं से तथा दूसरा तार उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दुओं से बांधा जाता है। जहाँ से दोनों तार मध्य में एक स्थान पर मिलते हैं, वहाँ एक लोहे या ताँबे का गोल पत्र बांध दिया जाता है, जिसके मध्य में एक छेद भी होता है।

कपाल यन्त्र का उपयोग - स्पष्ट क्रान्ति सिद्ध करने में, सूर्य के नतांश स्पष्ट करने में, दिगंश कोटयंश ज्ञान के लिए उपयोगी। इस यन्त्र से ग्रहों व नक्षत्रों के याम्योत्तरलंघन काल का साधन, पलभा साधन, ग्रहों की राशिगत, स्थिति का साधन तथा सायन लग्न और दशम लग्नादि का यथार्थ ज्ञान किया जाता है। यह यन्त्र समस्त गोलीय पदार्थों का सर्वविध साक्षात्कार कराता है।

वेध का प्रकार–जब हम इस यन्त्र से दिन में वेध करते हैं तो सर्वप्रथम चतु:सूत्री में मध्य स्थित लोहपत्र के छेद से यन्त्र में प्रकाशबिन्दु कहाँ पड़ रहा है, उसे देखना चाहिये। वस्तुत: जहाँ यह प्रकाशबिन्दु पड़ता है, वही हमारा दृष्टिस्थान होता है। उस दृष्टि स्थान से नाड़ीवृत्त पर्यन्त ध्रुवप्रोतवृत्त में स्पष्ट क्रान्ति सिद्ध हो जाती है।

क्षितिज से दृष्टि स्थान तक ६-६ अंशों वाले जितने उन्नतांशवृत्त हों उनका छ: गुणा सूर्य का उन्नतांश हो जाता है और यदि प्रकाश बिन्दु दो उन्नतांश वृत्तों के मध्य हो तो अनुपात करने पर स्पष्ट उन्नतांश होता है। इस उन्नतांशमान को ९० अंशों में घटाने पर सूर्य के नतांश स्पष्ट होते हैं।

यन्त्र में उस दिछ्र से आये प्रकाश बिन्दु के उपर से खस्वस्तिक पर से किया हुआ सूत्र क्षितिज में जिस स्थान पर लगे, उस स्थान से पूर्व दिशा या पश्चिम दिशा के बिन्दु तक जो भी निकट हो, जितने अंश होते हैं, उतने ही दिगंश कहलाते हैं। इसी प्रकार उस सूत्र व क्षितिज के संयोग स्थान से उत्तरदिशा या दक्षिण दिशा के बिन्दु तक दिगंश कोट्यंश कहलाती है।

भास्कराचार्य जी ने इस यन्त्र का नामकरण तोययन्त्र या जलयन्त्र के रूप में किया हैं, क्योंकि इसके तल में जल प्रवाह के लिए एक छिद्र होता है। सम्पूर्ण रूप से जल से भरे इस यन्त्र के छिद्र से एक निश्चित काल (दिन/घण्टे) में जल निकल जाता है और यन्त्र जल रहित हो जाता है। इस प्रकार जल की मात्रा से समय का पता लगाने के कारण इसे घटी यन्त्र भी कहा जात है। इस प्रकार समस्त गोलीय गतिविधियों का ज्ञान सहजतया हो जाने के कारण ही यह महत्वपूर्ण यन्त्र माना जाता है।

आप चित्र में कपाल यन्त्र के साथ आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र को भी देख रहे होंगे। इसके माध्यम से खगोलीय पिण्डों को देखकर उसकी वस्तु स्थिति पता लगाया जा सकता है। ग्रहण काल के दौरान भी पिण्ड को देखने में इस यन्त्र का उपयोग किया जाता है।

मिश्रयन्त्रम्

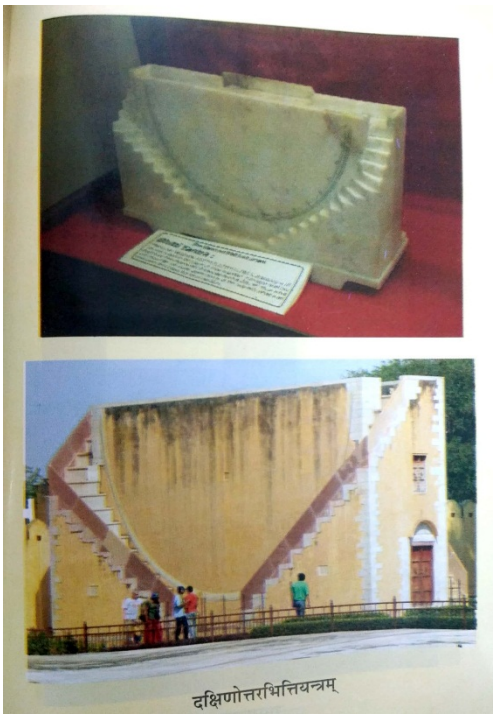

दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्रम्

आप दिल्ली शहर में अजमेरी द्वार से करीब 1.5 मील दूरी पर कुतुबमीनार सड़क पर बायीं और जयसिंहपुर के वेधशाला में मिश्र यन्त्र को देख सकते हैं। इस वेधशाला के सब यन्त्रों के उत्तर में प्रथम मिश्र यन्त्र हैं। मिश्र यन्त्र के पूर्व दिशा में दक्षिणोत्तरभित्ति यन्त्र स्थित है। आप दोनों ही यन्त्रों का छायाचित्र उपर के चित्र में देख सकते हैं। मिश्र यन्त्र में चार यन्त्र है - १. सम्राट यन्त्र, २. नियतचक्र

यन्त्र, ३. नीति यन्त्र तथा ४. कर्कराशिवलय यन्त्र।

सम्राट यन्त्र– सम्राट यन्त्र विशाल आकार में पत्थरों से बनाया जाता है। इसकी रचना विषुवद्वृत्तीय धरातल पर की जाती है। विषुवदवृत्तीय धरातल पर दक्षिणोत्तरवृत्त के सामने इस यन्त्र को बनाया जाता है। सर्वप्रथम वहाँ एक शंकुभित्ति का निर्माण किया जाता है। इसकी उन्नति उत्तर में (जयपुर या उत्तरी गोल वाले देशों में) अक्षांश के बराबर रखी जाती है। उसकी पाली में दृष्टि लगाकर शंकु के अग्रभाग पर देखने से ध्रुवतारा दिखाई देता है।

शंकुभित्ति पर सीढ़ियाँ भी बनानी चाहिये, जिससे कि दिन व रात्रि में यथासमय ग्रहों की स्थिति, क्रान्ति, शर, नतांश, उन्नतांश आदि को सूक्ष्मता से जानने के लिए शंकुभित्ति के दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम वृत्त चतुर्थांश बना देने चाहिये। इनमें भी पूर्व दिशा की ओर वृत्तचतुर्थांश तथा पश्चिम दिशा की ओर पश्चिम वृत्तचतुर्थांश बनाना चाहिये। तिर्यक् बनाए हुए वृत्त चतुर्थांशों की उपरी पाली को उर्ध्वपाली तथा नीचे पाली को अधोपाली नाम दिया जाता है। इस वृत्त पाली में १२ घण्टों के चिह्न मिनटों के संकेत देते हुए बनाने चाहिए। इन वृत्त चतुर्थांशों से समय का ज्ञान किया जा सकता है। जैसे कि मध्याह्न से पूर्व समय जानने के लिए पश्चिम वृत्तचतुर्थांश तथा मध्याह्न के पश्चात् समय जानने के लिए पूर्ववर्ती वृत्तचतुर्थांश उपयुक्त रहता है।

सम्राट यन्त्र में स्थानीय याम्योत्तरवृत्त पर बनाई गई दक्षिणोत्तर भित्तिरूपा शंकुपाली कहलाती है। इस पर मध्य स्थान से परमक्रान्तितुल्य अंशादि मान को लिख देना चाहिए। लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उर्ध्व बिन्दु से नीचे की ओर शंकुपाली पर दक्षिण क्रान्ति को जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए तथा निम्न बिन्दु से उपर की ओर उत्तराक्रान्ति जानने के लिए अंशादि मान लिखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–

1. यन्त्र की आवश्यकता होती है?
   क. ग्रहवेध के लिए ख. प्रयोगशाला में रखने के लिए ग. परीक्षण के लिए घ. उक्त सभी
2. शंकु यन्त्र का प्रयोग होता है?
   क. दिक् साधन में ख. पलभा साधन में ग. दिक्देशकाल साधन में घ. कोई नहीं
3. दिगंश कोटयंश ज्ञान के लिए किस यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।
   क. कपाल यन्त्र ख. राम यन्त्र ग. सम्राट यन्त्र घ. दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र
4. उन्नतांश में ९० अंश घटाने पर क्या मिलता है?

क. नतांश ख. अक्षांश ग. देशान्तर घ. चरान्तर

5. किस यन्त्र के वृत्तार्द्ध में शंकु होता है?

क. सम्राट यन्त्र ख. पलभा यन्त्र ग. कर्क राशिवलय यन्त्र घ. कोई नहीं

वृहत् सम्राट यन्त्र - ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

कर्क राशिवलय यन्त्र - इस यन्त्र के वृत्तार्द्ध में शंकु है। इस वृत्तार्ध के पूर्व बिन्दु से प्रारम्भ कर नीचे तक ९० अंश अक्षर व कला भाग अंकित है। तथा पश्चिम बिन्दु से वैसे ही ९० अंश और कला भाग अंकित कर दिये गये हैं। जब कर्क राशि का प्रारम्भिक बिन्दु दशम होता है, तब ही यह वेधोपयोगी होता है। इस गणित राशि वलय यन्त्रों की गणितानुसार होती है। विशेष बात यह है कि वेध समय में गृह नक्षत्रादि पश्चिम कपाल में हो तो सायन स्पष्ट आदि हो जाता है, परन्तु पूर्व कपाल वाले ग्रह-नक्षत्रादि वेध द्वारा जितने अंशादि प्राप्त हो उनको ६ राशि में घटाने से सायन स्पष्ट होते है।

दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र– याम्योत्तर रेखा पर ध्रुवाभिमुख इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। भित्ति या सीधी दीवार के समान निर्मित इस यन्त्र की पूर्व दिशा एवं पश्चिम दिशा की ओर वेध के उपयोगी चिह्न एवं उपकरण स्थापित किये जाते हैं। इस यन्त्र के पूर्वी भाग से वेध की क्रिया की जाती है।

वेध रीति व उपयोग– मध्य के शंकु के पश्चिम किनारें में इन दोनों वृत्तार्द्धों के केन्द्र हैं। केन्द्र स्थान पर शंकु रखने के लिए छिद्र बने हैं। शंकुओं के स्थिर करने से नियत समय शंकु छाया अपने-अपने वृत्तार्धो पर जहाँ पर लगती हैं वह स्थान दृष्टि स्थान है अथवा वृत्तपाली में नेत्र लगाकर देखने से सूर्य शंकु से सटा हुआ जहाँ दीखे, वह दृष्टि स्थान है। उस स्थान पर जितने अंशादिक होते हैं, वह ही स्पष्ट क्रान्ति है। अथवा वृत्तार्द्धों के मध्य बिन्दु से क्रान्ति के अंशादिक गणना करें। दृष्टि स्थान से मध्य बिन्दु दक्षिण हो तो दक्षिणा क्रान्ति और उत्तर हो तो उत्तरा क्रान्ति होती है।

रात्रि में सावधानीपूर्वक इष्ट नक्षत्र ग्रह को देखे। जिस समय वह ग्रह-नक्षत्रादि जिस स्थान से शंकु

संलग्न दीखे वह दृष्टि स्थान है। अत: दृष्टि स्थान जानकर पूर्ववत् उत्तरा व दक्षिणा क्रान्ति का ज्ञान होता है। इस तरह से ध्यानपूर्वक देखने से रात्रि में इष्ट, ग्रह, नक्षत्रादि की क्रान्ति ज्ञात करना इस यन्त्र के माध्यम से सुगम है।

शंकु के पूर्व भाग में भी दो वृत्तार्द्ध हैं। उनमें तीसरे भीतर वाले 'ग' वृत्तार्द्ध में मध्याह्न के पश्चात् ४ घण्टा ३६ मिनट पर वेध किया जाता है। तथा शंकु से पूर्व चौथे बाहर वाले घ वृत्तार्ध पर सायंकाल ५घंटा ८ मिनट वेध करने से स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात होती है। वेध विधि दिन-रात्रि में पश्चिम वृत्तार्धों के अनुसार ही है।

इस यन्त्र की यह विशेषता यह है कि पहला 'क' वृत्तार्ध जापान के 'नाटके' नामक नगर के मध्याह्न वृत्त के तुल्य है। अर्थात् जब वहाँ मध्याह्न होता है तब इस 'क' वृत्तार्द्ध पर शंकु छाया गिरती है।

दूसरा ख वृत्तार्ध 'पिक' नामक टापू में स्थित स्यूरिचेव स्थान का मध्याह्न वृत्त है।

तीसरा ग वृत्तार्ध इटली स्थित ज्यूरिच स्थान का मध्याह्न वृत्त है। यहाँ वेधशाला भी है।

चौथा घ वृत्तार्द्ध ब्रिटेन स्थित ग्रीनविच स्थान का मध्याह्न वृत्त है। यहाँ भी बहुत बड़ी वेधशाला है।

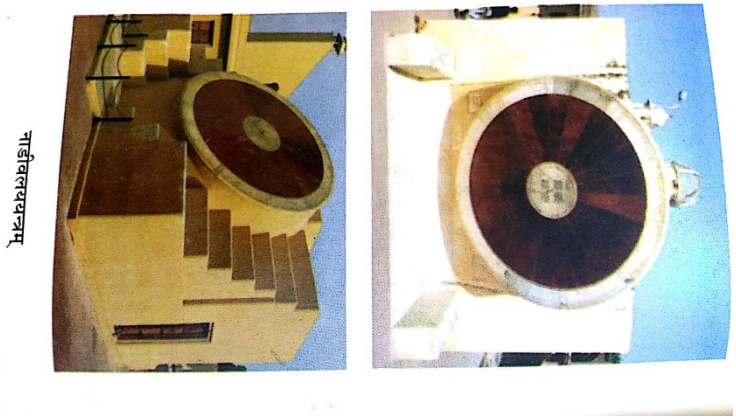

आप उपर के चित्र में वृहत् सम्राट यन्त्र और नाड़ीवलय यन्त्र को देख रहे हैं। आइए उसके बारे में जानते है।

वृहत् सम्राट यन्त्र - ग्रहों की गति, स्थिति व प्रकृति का प्रभावी व सूक्ष्म परीक्षण करने के लिए इसका निर्माण किया जाता है। जयपुर की वेधशाला में इसे विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना का प्रकार तथा इससे वेध करने की प्रक्रिया पूर्वोक्त सम्राट यन्त्र के समान ही समझनी चाहिये। वृहत् आकार का होने से इससे सेकेण्ड तक का सूक्ष्म समय का ज्ञान किया जाता है। इसी प्रकार क्रान्ति, नतांश, उन्नतांश, दिगंश, शर इत्यादि का ज्ञान भी कला, विकला पर्यन्त किया जाता है। संक्षेपत: यह सम्राट यन्त्र का ही विराट् स्वरूप है।

नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र– नाड़ीवलय का यह भाग दक्षिण दिशा की ओर झुका हुआ रहता है। इस नाड़ीवलय दक्षिणगोल यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक लोहे का शंकु लगा दिया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु को केन्द्र मानकर इससे वृहद्वृत्त, समवृत्त और लघुवृत्तों का निर्माण किया जाता है। इन वृत्तों में उर्ध्व- अधो रेखा तथा तिर्यक् रेखा बना दी जाती है। महद् और लघु इन दो वृत्तों में घण्टा, मिनटादि समय का उल्लेख कर दिया जाता है तथा तीसरे मध्यमाकार वाले वृत्त में नतघटी के चिह्न लगा दिये जाते है। इस प्रकार वृत्तों में चिह्न अंकित करने के पश्चात् यह यन्त्र वेध प्रयुक्त हो जाता है।

नाड़ीवलय उत्तर गोल यन्त्र– नाड़ीवलय यन्त्र का उत्तरी भाग ही नाड़ीवलय उत्तरगोल यन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र से उत्तरगोलीय ग्रहों व नक्षत्रों का वेध किया जाता है। इस यन्त्र के केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित किया जाता है। इसके पश्चात् इस शंकु से एक वृहद् वृत्त की रचना की जाती है। इस वृहद् वृत्त में घण्टा, मिनटादि समय का लेखन कर दिया जाता है।

क्रान्तिवृत्तयन्त्रम्

क्रान्तिवृत्त यन्त्र - क्रान्तिवृत्त का निर्माण ध्रुव की ओर अभिमुख करते हुए पत्थर से किया जाता है। ६० घट्यात्मक तथा स्थूल रूप से पलाओं के सहित इसका निर्माण किया जाता है। इसके निचले भाग में एक बिन्दु बनाया जाता है। इस यन्त्र में यह बिन्दु ही वेध के समय मुख्य होता है। इस यन्त्र के मध्य भाग में केन्द्र स्थान पर लोहे का एक शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु को घुमाने पर धातु से निर्मित दो वृत्त एक स्थान पर सम्मिलित आकार के हो जाते है।इस सम्मिलन स्थान से पुन: क्रमश: उनके अन्तर में वृद्धि होती जाती है तथा सम्मुख होने पर उनमें परम अन्तर हो जाता है। इनके परम अन्तर पर एक धातु निर्मित पट्टिका लगा देनी चाहिये। यह वेध पट्टिका वेध के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस वेध पट्टिका के दोनों भागों में दो तुरीय यन्त्र बना दिये जाते हैं। इनके माध्यम से ग्रहों का स्पष्टीकरण व शर इत्यादि का साधन किया जाता है।

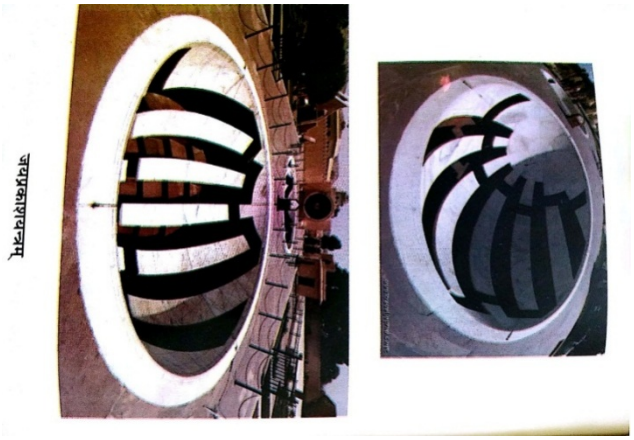

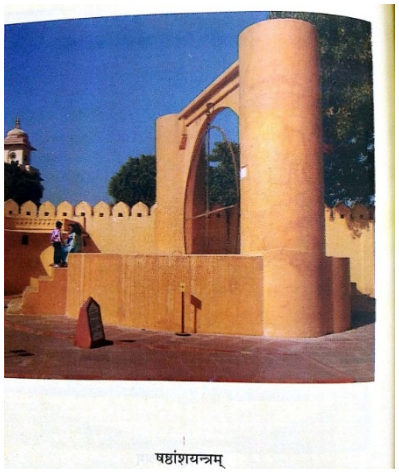

जयप्रकाश यन्त्र - रामयन्त्र के समान ही जयप्रकाश यन्त्र भी विशालकाय तथा दो भागों में बनाया जाता है। इसके परस्पर पूरक दोनों भागों को मिलाकर ही इस यन्त्र की पूर्णता सिद्ध होती है।

इसका कारण यह है कि इसके प्रथम भाग में जहाँ पत्थर की कलियाँ बनी होती हैं, उस स्थान पर द्वितीय भाग में रिक्तता रहती है तथा प्रथम भाग में जहाँ रिक्तता होती है, उस स्थान पर द्वितीय भाग में कलियाँ बना दी जाती हैं। यह रिक्त स्थान वस्तुत: ज्योतिषियों अथवा वेधकर्ता जिज्ञासुओं के आवागमन व वेध के सहज ज्ञान के लिए बनाया जाता है। यहाँ खड़े होकर गणितकर्ता अपनी गणित की शुद्धता का परीक्षण तथा ग्रहों का प्रत्यक्षत: वेध करता है।

इस यन्त्र के दोनों ही भागों का जो उर्ध्व प्रदेश होता है, वह वृत्ताकार भाग ही क्षितिजवृत्त कहलाता है। इस वृत्त में ३६० अंश लिख देने चाहिये। यन्त्र के दक्षिण भाग में अभीष्ट स्थान के अक्षांशों के समान स्थान पर क्षितिज से नीचे की ओर ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। वृत्त के केन्द्र स्थान को अध: खस्वस्तिक कहा जाता है। यहीं पर पूर्व पश्चिम अध: खस्वस्तिकों पर गया हुआ समवृत्त भी अंकित कर देना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर ध्रुवों के मध्य खस्वस्तिक से होकर गया हुआ दक्षिणोत्तरवृत्त उट्टंकित करें। पूर्व एवं पश्चिम दिग् बिन्दुओं से लगा हुआ तथा अध: खस्वस्तिक से उत्तर दिशा में अक्षांशों के समान अन्तर से नाड़ीवृत्त का निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार नाड़ीवृत्त से समानान्तरित स्थूल रूप से कुछ छोटे आकार के अहोरावृत्त भी बना देने चाहिये। मुख्यतया छ: अहोरात्रवृत्त तो होने ही चाहिये जो द्वादश राशियों का निर्देश करने वाले होते हैं। इनमें से तीन अहोरात्रवृत्त नाड़ीवृत्त से उत्तर दिशा में तथा तीन वृत्त उससे दक्षिण दिशा में बनाने चाहिये। सूक्ष्मता की दृष्टि से इन अहोरात्र वृत्तों की संख्या ३६० अंश या इससे अधिक भी हो सकती है।

षष्ठांश यन्त्र - मध्याह्नकाल में सूर्य के नतांश-उन्नतांश व क्रान्त्यादि जानने के लिए षष्ठांश यन्त्र की रचना की जाती है। कक्ष का निर्माण कर उसमें इस यन्त्र का निर्माण किया जाता है। कक्ष के दक्षिणी भाग की दीवार पर पूर्व और पश्चिम दिशा के कोणों से एक अधोमुखी अर्द्धगोलाकार आकृति का निर्माण किया जाता है। यह आकृति सफेद चूने या रंग से बना सकते हैं। इस आकृति में अंश कला व स्थूल विकलादि का अंकन किया जाता है। जिस स्थान पर से इन वृत्त खण्डों पर अंशादि का अंकन आरम्भ किया गया हो, उस बिन्दु के दोनों ओर अध: खस्वस्तिक का निर्माण करना चाहिये। दोनों बिन्दुओं के ऊपर कक्ष के उपरी भाग में छत में दो छिद्र किये जाते हैं। ये दोनों छिद्र ही षष्ठांश यन्त्र में वेध में प्रयुक्त होने वाले मुख्य उपकरण हैं।

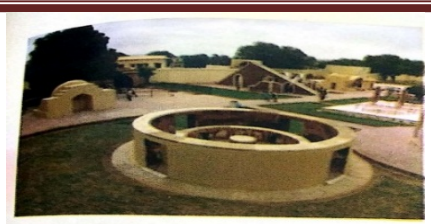

दिगंशयन्त्रम्

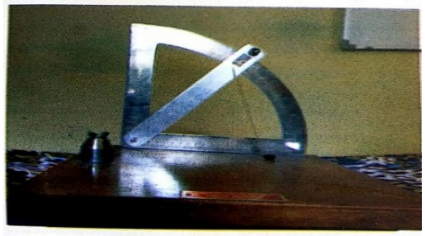

तुरीययन्त्रम्

दिगंश यन्त्र - एक-दूसरे के मध्य में विद्यमान तीन गोलाकार समानान्तरित भित्तियों के रूप में इस यन्त्र की रचना की जाती है। इस यन्त्र की तीनों भित्तियों का विवेचन निम्नलिखित है-

प्रथम भित्ति – यन्त्र के मध्य भाग में शंकु भित्ति के रूप में यह प्रथम भित्ति होती है। इसके केन्द्र में सूत्र बांधने की दृष्टि से छिद्र सहित एक शंकु भी होता है।

द्वितीय भित्ति – प्रथम एवं तृतीय भित्ति के मध्य में स्थित यह द्वितीय भित्ति इस यन्त्र में प्रमुखता से निर्मित की जाती है।

तृतीय भित्ति – इन दोनों भित्तियों से दुगुनी ऊँचाई पर उन्हीं के समानान्तरित बाहरी भाग में यह तृतीय भित्ति बनाई जाती है।

इन भित्तियों में ३६० अंश तथा स्थूल रूप से कलाएँ अंकित की जाती हैं। साथ ही बाहरी भाग में स्थित सबसे ऊँची भित्ति पर एक चतु:सूत्री स्थापित की जाती है, जिसके मध्यभाग में छिद्र सहित एक लोहे का पत्र बाँधा जाता है।

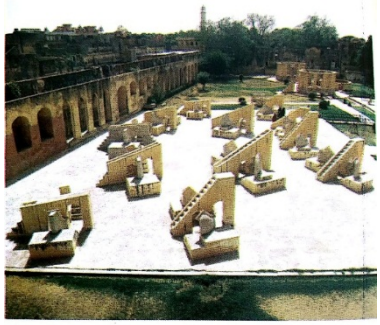

द्वादशराशिवलययन्त्राणि

जयपुर की वेधशाला में वृहत् सम्राट यन्त्र के पश्चिमी भाग में द्वादश राशियों के यन्त्र बने हुए हैं। इनका स्वरूप प्रामाणिक है तथा इनसे सूक्ष्मता से वेध कर परिणाम जाने जा सकते हैं। राशिवलय यन्त्रों से सायन ग्रहों का स्पष्टीकरण तथा शर इत्यादि का साधन किया जाता है। इन यन्त्रों की यह विशेषता है कि एक राशिवलय यन्त्र एक अहोरात्र में एक बार ही प्रयोग में आता है। राशिवलय यन्त्र का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि जिससे सायन राशि का प्रारम्भिक चिह्न जब दक्षिणोत्तर वृत्त में लगता है तब उस राशि का सायन दशम लग्न होता है। उसी समय वह राशियन्त्र वेध के लिए उपयोगी होता है।

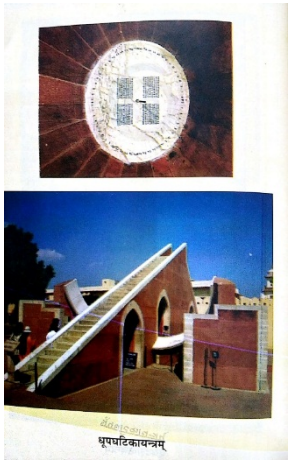
धूपघटिकायन्त्रम्

दिगंश यन्त्र सहित पलभा यन्त्र (धूपघटी)– पलभा यन्त्र में केन्द्र स्थान में धातु निर्मित एक शंकु स्थापित कर दिया जाता है। यन्त्र की परिधि में ३६० अंश अंकित कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार वही समय जानने के लिए यहाँ ३० घटिकायें अथवा घण्टा, मिनटादि अंकित कर दिये जाते हैं।

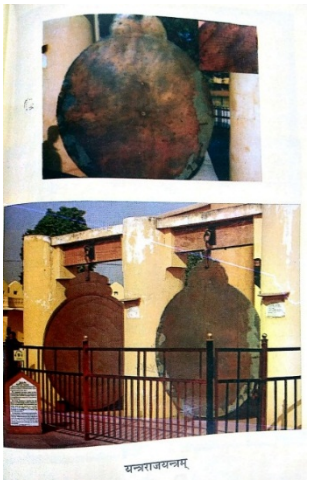
यन्त्रराजयन्त्रम्

यन्त्रराज– यन्त्रों में अत्यधिक महत्व तथा समस्त खगोलीय घटनाओं को इस एक ही यन्त्र द्वारा वेध कर सकने की योग्यता के कारण ही इसे 'यन्त्रराज' कहा गया है। यह धातु से बनाया हुआ होता है तथा कील में पिरोकर सभी दिशाओं में घूमता हुआ रखकर उसे लटकता हुआ रखा जाता है।

यन्त्र के मध्य में गोलाकार क्षेत्र में ३६० अंश अंकित करने चाहिये। इसकी एक घड़ी ६ अंशों की जाननी चाहिये। इसमें एक रेखा उर्ध्व – अध: तथा एक तिरछी रेखा बनानी चाहिये। इस यन्त्र को इस प्रकार स्थापित करें कि जब हम इस यन्त्र के सामने रहें तो हमारी बाईं ओर पूर्व दिशा, दाईं ओर पश्चिम दिशा, उर्ध्व- अधो रेखा में उपरी भाग में दक्षिण दिशा तथा नीचे की ओर उत्तर दिशा होनी चाहिये। इस यन्त्र को स्थिर करके इसमें सिद्धान्त ग्रन्थों में बतायी विधियों से नक्षत्रों के साथ सप्तर्षि, प्रजापति, लुब्धक, अगस्त्य आदि तारों के वेध स्थानों के नामों का भी उल्लेख वहाँ कर देना चाहिये। यन्त्र में क्षितिज वृत्त बनाकर उसमें ९० उन्नतांश वृत्तों को बनाना चाहिये। इसी प्रकार इस यन्त्र में नाड़ीवृत्त, कर्कराशिवृत्त, समवृत्त, दिगंशवृत्त तथा होरावृत्त आदि को भी यथास्थान चिह्नित कर देना चाहिये। यन्त्रराज के महद्वृत्त के केन्द्र स्थान में ध्रुवस्थान का चिह्न बनाना चाहिये। इसके उपर अत्यधिक भार से युक्त भ्रमणशील क्रान्तिवृत्त भी संलग्न कर देना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बारह राशियाँ भी अंशों के साथ टंकित करनी चाहिये। इस केन्द्र में ही हमारे लिये वेध कार्य में उपयोगी धातु से बनी हुई वेधपट्टिका स्थापित करनी चाहिये। इस यन्त्र के द्वारा तात्कालिक समय का ज्ञान, लग्न, दशमलग्न इत्यादि का साधन, ग्रहस्पष्टीकरण, ग्रहण व नक्षत्र दर्शन तथा समस्त प्रकार की गोलीय गतिविधियों का ज्ञान आसानी से पलक झपकते ही किया जा सकता है।

उन्नतांशयन्त्रम्

उन्नतांश यन्त्र - यन्त्रराज के समान ही उन्नतांश यन्त्र भी बड़े आकार में उपयोगी बनाया जाता है। यह यन्त्र धातु से बना हुआ चारों दिशाओं में घुमा सकने वाला तथा कील या दण्ड के सहारे लटकता

हुआ स्थिर किया जाना चाहिये।

गोलयन्त्रम्

गोल यन्त्र – भास्कराचार्य जी सिद्धान्तशिरोमणि के यन्त्राध्याय में गोल यन्त्र के बारे में लिखते है कि –

अपवृत्तगरविचिन्हं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाडीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम्।।
रविचिह्नस्य छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते।
उडुगोले कुजबिन्द्वोर्मध्ये नाडयो द्युयाता: स्यु:।।

अर्थात् इस विधि में खगोल के अन्तर्गत भगोल को बाँध कर वहाँ क्रान्तिवृत्त में मेषादि से आरम्भ करके रवि के भुक्त राशि अंशादि पर चिह्न लगायें, उसको क्रान्तिवृत्त पर रवि चिह्न कहते हैं। भगोल में उस बिन्दु को चलाकर क्षितिज के साथ मिलाये। पूर्वी क्षितिज में विषुवद्वृत्त जहाँ सम्पात करता है उस स्थान पर चाक से निशान लगावे। जल से समान की हुई भूमि में गोल यन्त्र को स्थापित करके भगोल को चलाकर इस प्रकार स्थापित करें कि रवि बिम्ब की छाया भूगर्भ में पतित हो। इस प्रकार करने से विषुवद वृत्त में क्षितिज वृत्त और बिन्दु के मध्य जितनी घटियाँ होती हैं उतना काल सूर्योदय के पश्चात् दिन गत का मान ज्ञात होता है और क्रान्तिवृत्त में मेषारम्भ बिन्दु से आगे क्षितिज वृत्त पर्यन्त जितनी राशि अंशादि होती है वह लग्न का मान ज्ञात होता है। यह गोल यन्त्र है।

रामयन्त्रम्

राम यन्त्र– रामयन्त्र दो भागों में बनाया जाता है। इसके एक भाग में जहाँ कलिका समान पट्टिका बनी होती है, उस स्थान पर दूसरे भाग में रिक्त स्थान होता है और इसी प्रकार दूसरे भाग में जानना चाहिये। इस रिक्त स्थान में खड़े होकर गोलीय पदार्थों का भली-भाँति वेध किया जाता है। रामयन्त्र के ठीक मध्य में एक लोहे का शंकु स्थापित किया जाता है। इस शंकु का मूलभाग अध: खस्वस्तिक के नाम से जाना जाता है। यन्त्र का ऊपरी गोलाकार परिधि स्वरूप भाग उस स्थान का स्पष्ट क्षितिज वृत्त होता है। इस क्षितिज वृत्त से शंकु के मूल भाग तक ९० अंश उट्टंकित कर दिये जाते हैं। इन अंशों से नतांश व उन्नतांश का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर बिन्दु से ३६० अंश तथा कुछ स्थूल कलाएं भी टंकित की जाती हैं। इनसे दिगंश का ज्ञान किया जाता है।

ध्रुवदर्शकयन्त्रम्

ध्रुवदर्शक यन्त्र - इस यन्त्र के द्वारा ध्रुव तारे का वेध किया जाता है, इसीलिये इसका नाम ध्रुवदर्शक यन्त्र रखा गया है। यह यन्त्र याम्योत्तरवृत्त के उपर तदाकाराकारित शंकुभित्ति के रूप में बनाया जाता है। जयपुर की दृष्टि से जहाँ कि ध्रुवोन्नति उत्तर दिशा में रहती है। उत्तर दिशा में इसकी उन्नति अक्षांशों के समानान्तर रखी जानी चाहिए। इससे उत्तर समस्थान से अक्षांशों के समान अन्तर पर उठा हुआ ध्रुव तारा दिखाई देगा।

वेध विधि - दिन में सूर्य के प्रखर तेज के कारण ध्रुव तारे को देखा नहीं जा सकता। इसीलिये रात्रि में शंकु पाली पर दृष्टि लगाकर पाली के उठे हुए अग्र भाग पर देखने से वहाँ जो स्थान दिखाई पड़े, वही ध्रुवस्थान होता है। उस ध्रुव स्थान के निकट जो तारा होता है, वही ध्रुव तारा कहलाता है। यद्यपि इस तारे को ध्रुव तारा कहा जाता है, किन्तु आचार्य कमलाकर ने इस ध्रुव तारे को भी चंचल व गतिशील सिद्ध करते हुए ध्रुव स्थान को ही स्थिर माना है। अत: भ्रमण करते हुए जो भी तारा इस स्थान पर होगा, इसके निकट रहेगा वही ध्रुव तारा कहलाएगा। वर्तमान में भी यह ध्रुव तारा अपने स्थान से कुछ हटा हुआ दिखाई पड़ता है।

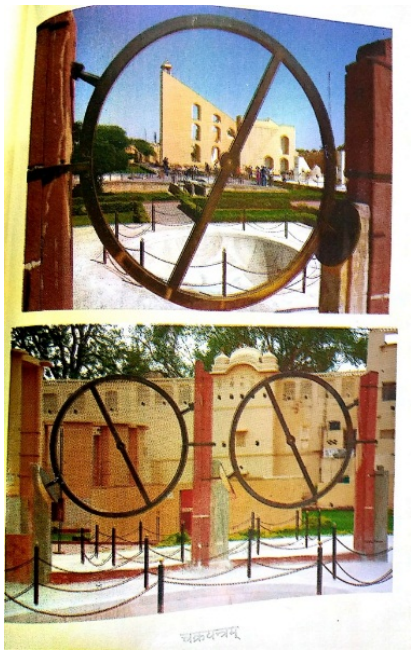

चक्र यन्त्र - ध्रुवतारें की ओर उन्मुख होता हुआ, यह यन्त्र धातु से बनाया जाता है। यह वृत्ताकार परिधिस्वरूप होता है। इसकी परिधि में ३६० अंश अंकित किये जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक अंश में १०-१० कलाओं के विभाग भी अंकित कर दिये जाते हैं। वृत्त के केन्द्र में एक वेधपट्टिका को व्यास रेखा के समान नलिका से लगाकर स्थापित करते हैं। इसको घुमाने से प्रत्येक वृत्त के दक्षिण में कोण

से नीचे साठ घड़ी अंकित आधार वृत्त बनाते हैं। इसी प्रकार पूर्व में कहे भाग से ही दक्षिण में एक छिद्र बनाते हैं। इस छिद्र में आधार वृत्त को स्पर्श करती हुई सुई के आकार की आधारवृत्त की ही वेधपट्टिका स्थापित कर उसी से ग्रहों का वेध किया जाता है।

5.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहवेध हेतु यन्त्रों की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन व अर्वाचीन आचार्यों ने विविध यन्त्रों का उपयोग अपने-अपने कालखण्डों में विधिवत् किया है। उन यन्त्रों में प्रमुखता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित यन्त्रों के नाम आते हैं –शंकु यन्त्र, आधुनिक कम्पास यन्त्र, आधुनिक नलिका यन्त्र, कपाल यन्त्र, आधुनिक टेलिस्कोप यन्त्र, आधुनिक तारा मण्डप, आधुनिक ग्लोब यन्त्र, मिश्र यन्त्र, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, अष्टमांश यन्त्र, गोल यन्त्र एवं धूपघटिका यन्त्र, आधुनिक बायनाकूल व चित्रालग्नमापक यन्त्र, वृहद्सम्राट यन्त्र, लघुसम्राट यन्त्र, नाड़ीवलय यन्त्र, क्रान्ति यन्त्र, जयप्रकाश यन्त्र, षष्ठांश यन्त्र, दिगंश यन्त्र, तुरीय, द्वादश राशि वलय, धूपघटिका, यन्त्रराज, उन्नतांश, गोल, राम यन्त्र, ध्रुवदर्शक यन्त्र एवं चक्र यन्त्र।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेध – वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना।

यन्त्र – जिन अवयवों के द्वारा ग्रहों का वेध किया जाता है, उसे यन्त्र कहते है।

वेधशाला – वेधानां शाला इति वेधशाला। अर्थात् वह स्थान जहाँ ग्रहों के वेध, वेध-यन्त्रों द्वारा किया जाता जाता है, उसका नाम वेधशाला है।

शंकु यन्त्र – पलभा मापक यन्त्र का नाम शंकु है। इससे दिक्, देश तथा काल का ज्ञान भी सम्यक् रूप से किया जा सकता है।

दिगंश यन्त्र– गोल एवं वर्तुलाकार तीन भित्तियों के रूप में यह यन्त्र ग्रहों की दिशा व दशा जानने के लिए बनाया गया है।

क्रान्ति यन्त्र – सूर्य की स्थिति जानने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

सायन सूर्य – अयनांश सहित सूर्य।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1.घ 2. क 3. क 4. क 5. ग

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक - आचार्य भास्कराचार्य।

(ख) यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

(ग) भारतीय ज्योतिष यन्त्रालय वेधपथ प्रदर्शक – पं0 गोकुल चन्द्र भावन

(घ) सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री

(ड.) प्रस्तरवेधशाला – प्रोफेसर भास्कर शर्मा 'श्रोत्रिय'

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सवाईजयसिंहस्यज्योतिषेऽवदानम्– प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

यन्त्र परिचय – डॉ0 विनोद शर्मा

वेधशालावैभवम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

सिद्धान्तशिरोमणि – पं0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - आचार्य कमलाकर भट्ट

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रमुख यन्त्रों का नाम व उसका उपयोग लिखिये।

2. चक्र एवं राम यन्त्र का परिचय व वेध विधि का वर्णन कीजिये।

3. सम्राट यन्त्र का वर्णन कीजिये।

4. गोल यन्त्र का प्रतिपादन कीजिये।

5. शंकु, वृहद सम्राट, दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र तथा दिगंश यन्त्र का उल्लेख कीजिये?

खण्ड - 3
साधन विचार

इकाई – 1 पलभा एवं चरखण्ड साधन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पलभा एवं चरखण्ड परिचय

1.3.1 पलभा एवं चरखण्ड साधन स्वरूप

1.3.2 पलभा एवं चरखण्ड साधन

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAJY(N)-350 के तृतीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बिन्धत है तथा इसका शीर्षक है- '**पलभा एवं चरखण्ड साधन।** पलभा एवं चरखण्ड साधन लग्न साधन के लिये आवश्यक अंग है।

पलभा का अर्थ है – द्वादशांगुल शंकु की छाया। पलभा साधन में ही चरखण्ड साधन भी किया जाता है। इस इकाई में आप इन विषयों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करेंगें।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने इष्टकाल, पंक्तिस्थ ग्रह, चन्द्रस्पष्ट, ग्रहसाधन आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ इस इकाई में आप पलभा एवं चरखण्ड का विधिवत अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गतजन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त पलभा एवं चरखण्ड** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांग से सम्बन्धित पलभा एवं चरखण्ड का ज्ञान प्राप्त कर लेंगें, जिसके फलस्वरूप आप उपर्युक्त का साधन करने में सामर्थ्यता को प्राप्त कर सकेंगें।

1.3 पलभा एवं चरखण्ड परिचय

मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्द्धजाभा पलभा भवेत् सा।
त्रिष्ठाहता स्युदशभिर्भुजगैर्दिग्भिश्चिरान्ताद् गुणोद्धृताऽन्त्या॥

जिस दिन सायन सूर्य राशि अंश कला विकला से शून्य हो अर्थात् जब सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर हो,(यह समय 21 मार्च और 23 सितम्बर को होता है) जब दिन - रात बराबर होता है उस दिन मध्याह्न (दोपहर) के समय में 12 अंगुल की एक शंकु सम भूमि में किसी खुले स्थान में स्थापित करें। ठीक मध्याह्न के समय उस शंकु की जितनी छाया पड़े उसे अंगुल व्यांगुल में नाप लेना चाहिये। यही नाप उस स्थान की **पलभा** होगी।

अर्थात् सम्पात बिन्दु के मध्याह्न काल में 12 अंगुल की शंकु की छाया का जो नाप हो उसे पलभा कहते है। मापन करते समय में समानता हो और अंगुल, प्रति अंगुल, तत्प्रति अंगुल तक ठीक –

ठीक नाप लेकर लिख लेना चाहिये। एक लकड़ी में नाप का चिह्न नापने के लिये बनाकर रख लेना चाहिये। जो शंकु स्थापित करें सम भूमि में बिल्कुल सीधी स्थापित करें जिससे उसके दोनों और 90 – 90 अंश के कोण रहें।

यदि स्वस्थान के अतिरिक्त किसी दूर के स्थान की पलभा निकालने की आवश्यकता पड़ जाये तो उस निमित्त उसी स्थान पर जाना और इष्ट समय अर्थात् 21 मार्च तक समय की प्रतीक्षा करना, बहुत ही असुविधा जनक है। इस कारण अक्षांश पर से पलभा निकालने की रीति भी जान लेनी चाहिये जिसके आधार पर किसी भी देश या स्थान की पलभा निकाली जा सकती है।

किसी स्थान के अक्षांश जानने की आवश्यकता हो तो प्रारम्भिक ज्ञान खण्ड में बताई रीति से ध्रुवतारा की उँचाई नाप कर अपनें स्थान का अक्षांश जान सकते है या किसी विद्यालय क या सरकारी नक्शों को देखने पर जहॉं इष्ट स्थान दिया हो। प्राय: सभी नक्शों में अक्षांश और देशान्तर दिया रहता है उसको देखकर इष्ट स्थान के अक्षांश की खोज करना चाहिये।

विषुवत् संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में सूर्य ठीक विषुवद् वृत्त पर नहीं रहता अपितु थोड़ा इधर उधर रहता है। सूर्य उस समय बिल्कुल विषुवद् वृत्त पर ही हो, ऐसा अवसर कई वर्षों के बाद ही आता है। लेकिन प्राचीन काल से ही इसी पलभा द्वारा लग्न साधनार्थ चरखण्ड बनाये जाते रहे है। इसी कारण इस पद्धति द्वारा साधित लग्न में भी स्थूलता बनी ही रहती है। इसी पलभा का नाम अक्षभा या विषुवदभा भी है। वह 0 अक्षांश पर शून्य रहती है। तथा उत्तर दक्षिण की ओर हटने पर इसका मान बढ़ने लगता है। अत: जहॉं का अक्षांश ज्ञात हो, वहॉं की पलभा अक्षांशों द्वारा सहज ही जानी जा सकती है। अथवा पलभा ज्ञात हो तो उससे स्थानीय अक्षांश भी ज्ञात हो जाता है।

अक्षांश द्वारा पलभा साधन –

1. अक्षांशों को 10 से गुणाकर, गुणनफल को 625 में से घटा लें।
2. शेष का वर्गमूल लेकर उसे 25 में से घटाने पर पलभा होती है।

उदाहरणार्थ -

दिल्ली का अक्षांश $28.39 \times 10 = 286.30$

$625 - 286.30 = 338.30$ का वर्गमूल लेना होगा।

सावयव अंको का वर्गमूल निकालने के लिये यह विधि अपनायें।

1. $\sqrt{338} = 18$, शेष 14 बचे।
2. शेष में 1 जोड़कर 60 से गुणा किया तो $15 \times 60 = 900$ हुआ।

3. 900 + 30 (पूर्व शेष)= 930 में पहले के मूल 18 को दुगुना कर व उसमें 2 जोड़कर 18 × 2 = 36 + 2 = 38 से 930 में भाग दिया
4. 930 ÷ 38 = 24 लब्धि हुई। अत: सूक्ष्म वर्गमूल 18.24 रहा। इसे 25 में से घटाने पर 25- 18.24 = 6.36 दिल्ली की पलभा है।

पंचांगों में दिल्ली की पलभा 6.32 या 6.33 भी दी होती है। अंगुलों में भेद अपरिहार्य है।

पलभा द्वारा अक्षांश ज्ञान– अंगुलादि पलभा को पॉच से गुणा करें। तदुपरान्त पलभा के वर्ग को 10 से भाग देकर लब्धि को पंचगुणित पलभा में से घटा दें तो अक्षांश होंगे। यह एक स्थूल प्रकार है। शुद्ध सूक्ष्म प्रकार के लिये बहुत सी क्रियायें है।

दिल्ली पलभा 6.36×5 = 33.00 है। $(6.36)^2$= 43.33

43.33 ÷ 10 = 4.21 को घटाया। 33.00 – 4.21 = 28.39 दिल्ली का अक्षांश हुआ। यदि 28^0 38 उत्तरी अक्षांश से क्रिया करें तो पलभा 6.35 सिद्ध होती है।

पलभा से चरखण्ड साधन का उदाहरण–

काशी की पलभा – 5।45 है, तो वहॉ का चरखण्ड साधन –

5।45	5।45	5।45
×10× 8× 10		
50।450÷60	40।360÷60	50।450÷60
+7 +6+ 7		
57	46	57 ÷ 3 = 19

इस प्रकार 57, 46, एवं 19 ये काशी के तीन चरखण्ड हुये।

पलभा चक्र सारिणी

अक्षांश	पलभा			अक्षांश	पलभा			अ.	पलभा			अ.	पलभा			
	अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्	
1	0	12	34	16	3	26	24	31	7	12	36	46	12	25	37	
2	0	25	9	17	3	40	5	32	7	29	53	47	12	52	5	
3	0	37	44	18	3	53	56	33	7	47	31	48	13	19	34	
4	0	50	21	19	4	7	55	34	7	5	38	49	13	48	18	
5	1	3	0	20	4	20	0	35	7	24	7	50	14	18	3	

6	1	15	40	21	4	26	22	36	8	43	5	51	14	49	8	
7	1	28	23	22	4	50	52	37	9	2	25	52	15	21	32	
8	1	41	10	23	5	5	83	38	9	20	30	53	15	55	30	
9	1	54	0	24	5	20	31	39	9	43	1	54	16	31	6	
10	2	6	54	25	5	35	42	40	10	4	9	55	17	8	34	
11	2	19	55	26	5	51	7	41	10	25	50					
12	2	33	0	27	6	6	0	42	10	40	18					
13	2	46	12	28	6	22	48	43	11	11	24					
14	2	59	28	29	6	39	4	44	11	35	24					
15	3	12	54	30	6	55	41	45	12	0	0					

अक्षांश से पलभा निकालना–

एक त्रिज्या – 3438। इस प्रकार इष्ट अक्षांश की ज्या Sine । ज्या लाग्रतमिक सारिणी के सहारे निकाली जाती है। फिर तो अक्षांश की ज्या होगी वह अक्षज्या होगी।

कोटिज्या – लम्बज्या = त्रिज्या^{2} **- अक्षज्या^{2}।**

पलभा और चरखण्ड साधन की रीति–

जिस दिन अयनांशसहित सूर्य - राशि अंश कला विकलासे शून्य होया उस दिनमध्याह्नके समय समान भूमिपर बारह अंगुलका शंकु रखे जो छाया पड़े उसको **पलभा**कहते हैं। तिस पलभाको तीन स्थानमें लिखकर क्रमसे१०।८।१० से गुणा करे , अन्तके तीसरे गुणनफलमें३तीनका भाग देय तब क्रमसे तीन चरखण्ड होते हैं।

उदाहरण --काशीकी पलभा५अंगुल४५प्रतिअंगुल है इसको पहले१० से गुणा करा तब५७अंगुल३० प्रतिअंगुल यह प्रथम चरखण्ड हुआ। फिर पलभा५अंगुल४५प्रति अंगुल को८से गुणा करा तब४६अंगुल . प्रति अंगुल यह द्वितीय चरखण्ड हुआ। पलभा५अंगुल४५प्रति अंगुलको१० दशसे गुणा करा तब५७अंगुल३० प्रति अंगुल हुआ। इसमें३का भाग दिया तब१९अंगुल१० प्रति अंगुल तीसरा चरखण्ड हुआ। इस प्रकार प्रथम चरखण्ड५७अ ., ३० प्र . हुआ , दूसरा चरणखण्ड४६अं . हुआ , तीसरा चरखण्ड१९अं ., १० प्र . हुआ।

चर, चरसंस्कार भुजसंस्कार और अयनांश–

सायनरविकी पूर्वोक्तकेन्द्रसे भुज लानेकी रीतिके अनुसार भुज लावे , वहभुज यदि राशि शून्य होय तब अंशोको छोडकर केवल अंशादिमात्राको प्रथमचरणखण्डसे गुणा करे और यदि भुजमें एक राशि होय तो राशिको छोडकर अंशादिकोद्वितीय चरणखण्डसे गुणा करे और यदि भुजमें दो राशि होंय तो

राशिको छोडकरकेवल अंशादि मात्राको तृतीय चरणखण्डसे गुणा करे जो गुणन फल हो उसमें३० तीसका भाग देय जो लब्धि मिले उसमें जिस चरणखण्डसे गुणा करा हो उससे पहला चरणखण्ड जोडदेय तब चर होता है। वह सायन मेषादि छःराशिके भीतर होय तो ऋण होता है और छः राशिसे अधिकतुलादिसे कम छः राशि होय तो धन होता है। यदि सायंकालीन ग्रह करना होय तोचरको विपरीत ग्रहण करे अर्थात् सायन रवि मेषादि छः राशियोंके भीतर होय तोधन और तुलादि छः राशिके भीतर होय तो ऋण जाने ।

वह चर यदि धन होय तो मन्दस्पष्ट रविकी विकलाओंमें युक्त करदे और ऋण होय तो घटा देय तब स्पष्ट रवि होता है । चरको२से गुणा करकें नौका भाग देय जो लब्धि होय उसका चरके समान धन ऋण समभ्क्तेऔर मन्द स्पष्ट रविकी कलाओंमें युक्त करदेय (इसको चर संस्कार औरद्वितीयफलसंस्कार कहते हैं ।

रविके मन्द फलमें उसका भाग देकर जो लब्धि हो उसको भी चरके समान धन ऋणमानें और मन्दस्पष्ट रविके अंशोमें युक्त करदे (इसको मन्दफलसंस्कार औरतृतीयफलसंस्कार भी कहते हैं । इन दोनों रीतियोंका चन्द्र स्पष्ट करनेमेंकाम पडता है) । शालिवाहनशकेमें चारसौ चौवालीस४४४घटा देय जो शेषरहे वह कला होती है उनमें साठका भाग दे जो लब्धि मिले वही अयनांश होता है ।अयनांशको मन्दस्पष्टरविमें मिला दे तब सायन रवि होता है।

उदाहरण --शाके५३३४में४४४घटाये तब शेष रहे१०९० यह कला हैं , इनमें६० का भाग दिया तो लब्धि हुई१८अं .१० कला यह अयनांश है , इसको मन्दस्पष्ट रवि१रा .५अं .४४कला१० वि . में युक्त किया तब१रा .२३अं .५४क .१० वि . यह सायन रवि हुआ । यह सायन रवि तीन राशिके भीतर है इस कारण यह भुज है । अब इस१रा .२३अं .५४क .१० वि . भुजमें एकराशि है इस कारण अंशादिको (२३अं .५४क .१०वि .) को द्वितीय चरखण्ड४६से गुणा करा तब गुणनफल१०९९अं .३१क .४० वि . हुआ इसमें३० का भाग दिया तब लब्धि हुई३६विकला३९प्रतिविकला , प्रथम चरखण्डसे गुणा किया था इस कारण द्वितीय चरखण्ड५७को लब्धि३६वि .३९प्रतिविकलामें युक्त किया तब९३विकला३९प्रति विकला यह चर हुआ ऋण है क्योंकि सायन रवि मेषादि छः के भीतर है । इस कारण मन्द स्पष्टरवि१राशि५अंश४४कला१० विकलामें चर९३वि . अर्थात्१क .३३विकलाको घटाया तब शेष रहा१रा .५अं४२क .३७वि . यह स्पष्ट रवि हुआ ।

दिनमान रात्रिमान और अक्षांश लानेकी रीति-

यदि सायन रवि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत होतो उसको उत्तर गोलीय कहतेहैं और यदि सायनरवि तुलादि छः राशिके अन्तर्गत हो तो उसको दक्षिणगोलीयकहते हैं । इसी प्रकार यदि सायन रवि मकरादि छः राशिके अन्तर्गत हो उसकोउत्तरायण कहते हैं और यदि कर्कादि छः राशिके भीतर हो तो दक्षिणायन कहतेहैं , पीछे लायेहुए पलात्मक चरका यदि सायन रवि उत्तरगोलीय होय तो१५पन्द्रह

घडीमें युक्त करे और सायनरवि दक्षिणगोलीय हो तो पलात्मकचर१५पन्द्रह घडीमें घटा दे जो शेष रहे वही दिनार्द्ध होता है । उस दिनार्द्धको३०घड़ीमें घटादे तब जो शेष रहे सो रात्र्यर्द्ध होता है । तदनन्तरदिनार्द्धको द्विगुणित करनेसे दिनमान होता है और रात्र्यर्द्धको द्विगुणितकरनेसे रात्रिमान होता है और दिनमान तथा रत्रिमानको जोड़नेसे अहोरात्रमानहोता है ।पलभाको पांचसे गुणा करके जो गुणफल मिले उसको अंशात्मक माने उसमें पलभाकेवर्गका दशवां भाग अंशात्मक घटा दे जो शेष रहे वह अक्षांश होता है ।अक्षांश सर्वदा दक्षिण होता है , क्योंकि हिन्दुस्थानके दक्षिण (विषुववृत्तरेखा) है ।

उदाहरण ---पलात्मकचर९३यह सायनरवि उत्तरगोलीय है क्योंकि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत है इस कारण चर९३को१५घड़ीमें युक्त किया तब१६घड़ी३३पल यह दिनार्द्ध हुआ । इस दिनार्द्ध१६घ .३३प . को३० घड़ीमें घटाया तब शेष रहा१३घ .४७पल रात्र्यर्द्ध हुआ। दिनार्द्ध१६व .३३पलको द्विगुणित किया तब३३घ .६पल यह दिनमान हुआ रात्र्यर्द्ध१३घ .२७को द्विगुणित किया तब२६घड़ी५४पल यह रात्रिमान हुआ। दिनमान और रात्रिमानको जोडा तब६० घड़ी अहोरात्रिमान हुआ॥

पलभा५अंगुल४५प्रतिअंगुलको५से गुणा करा तब२८अं .४५कला हुआ । तब पलभा५।४५का वर्ग किया तो३३।३हुआ इसमें दशका भाग दिया तब३अं .१८क .१८वि . लब्धि हुए इनको पांचसे गुणा करी हुई पलभा२८अं .४५क . में युक्त करा तब२५अं .२६क .४२वि . यह काशीका दक्षिण अक्षांश हुआ॥

भुज -कोटि -पद -सूर्यमन्दोच्च --केन्द्र और रवि मन्द फल साधनकी रीति-

यदि ग्रह का राश्यादि मान तीन राशि से कम हो तो वहीं **भुज** होता है । औरतीन राशिकी अपेक्षा अधिक हो तो छः राशिमें घटाकर जो शेष बचे वह भुज होताहै । औरछ: राशि से अधिक हो तो छ: राशि ही उसमें घटाने से जो शेष बचे वह भुज होता है । नव राशि से अधिक हो तो बारह राशि में घटाकर जो शेष रहे वहीभुज होता है । बारह राशि में घटाने से शेष कोटि होता है । तीनतीन राशि का एक एक पद होता है ।२रा .१८अं . क . ० विकलायह रवि का मन्दोच्च होता है । मन्दोच्चमें ग्रह घटा देय जो शेष रहे सोमन्दकेन्द्र होता है (और शीघ्रोच्चमें ग्रह घटा कर जो शेष रहे सोशीघ्रकेन्द्र होता है) मेष आदि छः केन्द्र में धन मन्द फल होता है (अथवाशीघ्रफल होता है) । तुला आदि छः केन्द्रमें ऋण मन्द फल होता है । रविकामन्द केन्द्र उक्त रीतिसे लावे । रविका केन्द्र लाकर उसके भुज करे और उनभुजों के अंश करे , उनमें नौ९का भाग देय जो लब्धि मिले उसको बीचअंशमें घटावे जो शेष रहे उसको उपरोक्त नवमांश से गुणा कर देय जो गुणनफल होयउसको अलग एकांत स्थान में लिखे । फिर नौ९का भाग देय जो लब्धि होय उसको५७अंशमें घटावे जो शेष रहे उसको अलग एकांतमें लिखे हुए पूर्वोक्त अंशादिमेंभाग देय जो लब्धि होय उसको अंशादि मन्द फल जाने । यह

मन्दफल , केन्द्र मेषराशिसे तुलाराशि पर्यंतके भीतर होय तो धन और तुलाराशिसे लेकर मेषपर्यन्त६राशिके भीतर होय तो ऋृण जाने। तदनन्तर यदि मन्दफल मध्यम रविमें धन होय तोयुक्त कर देय और ऋण होय तो घटा देय तब मन्द स्पष्ट रवि होता है।

उदाहरण –रविके मन्दोच्च२रा ., १८अं ., .क . , .वि . है , इसमें मध्यम रवि१रा .४अ .१३क .४२वि . घटाया तो शेष रहा१रा .१३अ .४६क .१८वि . यह रविका केन्द्र हुआ , यह केन्द्र तीन राशि से कम है , इस कारण भुज है। इससे जो राशि है उसके अंश करके अंशों में जोड़े तब४३अं .४६क .१८वि . हुए इनमें नौ९का भाग दिया तब लब्धि हुए४अं .५१क .४८वि . इनको२० अंशमें घटाया तब शेष रहे१५अं .८क .१२वि . इनको भुज के नवमांश४अं .५१क .४८वि . से गुणा करा तब७३अं .३६क .५२वि . हुए इनको दो स्थान में लिखा एक स्थान में९नौ का भाग दिया तब८अं .१० क .४५वि . लब्धि हुए इनको५७अंशमें घटाया तब शेष रहे४८अं .४९क .१५विकला इनका दूसरे स्थानमें लिखे हुए७३अं .३६क .५२वि .मे भाग देनेके लिये भाज्य७३अं .३६क .६२वि . ० भाज्य४८अं .४९क .१५वि . इन दोनोंकी कला करी तब भाज्य२६५०१२भाजक१७५७५५हुए। फिर भाज्य२६५०१२में१७५७५५का भाग दिया तब अंशादि लब्धि हुई१अं ., ३०क ., ४८वि . यह रविका मन्द फल हुआ यह धन है क्योंकि केन्द्र मेषादि छः राशि से कम है। इस कारण इस१अं ., ३० क ., २८वि . मन्दफलको मध्यम रवि१रा ., ४अं ., १३क ., ४२वि . मे युक्त किया तब१रा .५अं ., ४४क ., १० वि . यह मन्दस्पष्ट रवि हुआ।

1.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में पलभा एवं चरखण्ड एक महत्वपूर्ण इकाई है। मेषादि राशियों में सायन सूर्य से दिनार्द्ध में पलभा का ज्ञान किया जाता है, और जब हमें पलभा का ज्ञान हो जाता है, उसी पलभा से हम चरखण्ड का ज्ञान भी गणितीय रीति से कर लेते है। ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया में हमें इनकी आवश्यकता होती है। आप इस इकाई में पलभा साधन एवं चरखण्ड साधन किस प्रकार होता है। उसकी गणितीय उपपत्ति को अच्छी तरह से समझ पायेंगे।

अभ्यास प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -

1. पलभा का ज्ञान किस समय में किया जाता है।
2. सायन सूर्य का क्या अर्थ होता है।
3. सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर कब होता है।
4. चरखण्ड का ज्ञान किस आधार पर किया जाता है।

5. एक त्रिज्या का मान कितना होता है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

पलभा –

चरखण्ड -

ग्रहस्पष्टीकरण–

ग्रहगति आदि -

अभ्यास प्रश्न का उत्तर -

1.दिनार्द्ध में

2. अयनांश सहित सूर्य

3. 21 मार्च और 23 सितम्बर को

4. पलभा

5. 3438

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

1.7 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था

7. ज्योतिष प्रवेशिका

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. पलभा को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।
2. चरखण्ड से आप क्या समझते है। उसका साधन कीजिये।

ईकाई – 2 अयनांश साधन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अयनांश परिचय

2.3.1 अयनांश साधन

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के द्वितीय इकाई से संबंधित है जिसका शीर्षक है – अयनांश साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपनें पलभा, चरखण्ड, लंकोदय तथा स्वोदय मान का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ इस इकाई में अयनांश का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

अयन से सम्बन्धित अंश को **अयनांश** कहते है। आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है।अयन के ज्ञानाभाव में हम ग्रहों के बारें में सम्यक् अध्ययन प्राप्त नहीं कर सकते है।

इस इकाई में आप अयनांश से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन प्राप्त करेंगे, जिसके पश्चात् आप अयनांश को भली – भॉति समझ सकेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

1. अयनांश क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. सम्प्रति वेधोपलब्ध अयनांश का मान कितना हैं इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. अयनांश साधन कैसे किया जाता है।
4. कुण्डली निर्माण में अयनांश का क्या प्रयोजन है।
5. ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया में अयनांश के महत्व को समझ पायेंग

3.3 अयनांश का परिचय

अयनांशसाधन-अयनांश साधन के कई प्रकार ज्योतिष गणित मे प्रचलित हैं। यहां पर हम चित्रापक्षीय अयनांश साधन बतलायेंगे। क्योंकि आधुनिक पंचागकार इसी अयनांश को प्रयोग में ला रहे हैं।

मेषादि विन्दु से बसंत-संपात विन्दु की दूरी अयनांश कहलातीहै।चित्रा तारा से शरद संपात की दूरी भी यही होने के कारण इसअयनांश को चित्रापक्षीय अयनांश भी कहा जाता है।

अयनांशगति-

सूर्यसिद्धान्त से 54 विकलाप्रतिवर्ष

ग्रहलाघव से 60 विकलाप्रतिवर्ष

दृश्यगणित से 50.3 विकलाप्रतिवर्ष

विधि -

खखाष्टम्यून 1800 शकात्खशैले: 70

खपन्चभि 50 भागकलादिलब्ध्यो:।

यदंतरंतत्सहिताद्विहस्ता 22

नवांक 9 दस्त्राअयनांशसंज्ञा॥

जिस वर्ष का अयनांश निकालना हो उस वर्ष के शाके में से 1800 घटाओ शेष को दो स्थानों मे लिखो एक स्थान में 70 का भाग देकर अंशादि फल लाओ। दूसरे स्थान पर 50 का भाग देकर कलादि फल लाओ। अंशादि फल मे कलादि फल घटाओ जो शेष बचे उसे 22^0 09’ 29’’
मे जोड़ने से मेषसंक्रांति के दिन अयनांश होगा।

उदाहरण - 1 मई 2011 का अयनांश

शाके 1933 -1800 =133

133/70 = लब्धि 1 शेष 63 गुणा 60 = 3780

3780/70 = 54

दूसरीबार

133/50 = लब्धि 2 शेष 33 गुणा 60 =1980

1980/50 = लब्धि 39 शेष 30 गुणा 60 = 1800

1800/50 = लब्धि 36

= 01^0 54’ 00’’ 00’’’

- 02’ 39’’ 36’’’

= 01^0 51’ 20’’ 24’’’

22^0 09’ 29’’

+01^0 51’ 20’’

=24^0 00’ 49’’ यहमेषार्ककालिकअयनांशहुआ।

1 मई 2011 कोप्रात: 5:30 कासूर्यस्पष्ट

00 राशि 16 अंश 16 कला 31 विकलाया 16.27 अंश

360 अंशमेअयनगति =50.3 विकला

16.27 अंशमेंअयनगति = 50.3 गुणा 16.27

= 824.88

824.88/360 = 2.29 विकला

इसेमेषार्ककालिकअयनांशमेंजोड़देंगे

जोड़नेपर 24^0 00’ 51 स्पष्टअयनांशप्राप्तहुआ।

जगत् के सब पंचांगों की उत्पत्ति प्राचीन काल में धार्मिक क्रियाओं के समय निश्चित करने के लिए हुई है। बाद में उनमें सामाजिक उत्सव और वर्तमान काल में राजकीय महत्व के कार्यक्रम भी शामिल किए गए हैं। हमारे समस्त प्राचीन सामाजिक उत्सवों को भी धार्मिक स्वरूप दिया गया है। हमारे भारत देश में कई शताब्दियों से विविधधर्म प्रचलित हैं। इससे हमारे पंचांग भी विविध प्रकार के बने हैं। इनके मुख्य प्रकार (1) हिंदू, (2) इस्लाम, (3) पारसी और (4) खिष्टीय है। आज के हिंदू पंचांगों के भी लगभग 50 से अधिक प्रकार पाए जाते हैं। हिंदू पंचांगों के अतिरिक्त अन्य (इस्लामी आदि) पंचांगों में गणित का विषय बहुत कम आता है, इससे हमारी अधिकतर चर्चा हिंदू पंचांगों के विषय में ही होगी। अत: इस लेखमें, जहाँ अन्यथा न कहा गया हो, वहाँ "पंचांग" शब्द से हिंदू पंचांग ही समझना चाहिए।

हमारे पंचांगों में उत्सवों और व्रतों के अतिरिक्त ग्रहण, सूर्योदयास्त, इष्ट घटनाओं के समय, आकाश में ग्रहों की स्थिति इत्यादि खगोलीय विषय दिएजाते हैं। खगोलशास्त्र आजकल पश्चिम में इतनी उन्नत स्थिति में आ गया है कि वहाँ के पंचांगों में दिए हुए खगोलीय घटनाओं के समय आकाशस्थित ग्रहों कीप्रत्यक्ष घटनाओं के साथ सेकंड तक बराबर मिल जाते हैं और यहाँ हमारेपंचांगों का गणित इतना स्थूल हो गया है कि उनके ग्रहणों में डेढ़ घंटे तकका अंतर पाया जाता है। इसका कारण यह है कि जिन ग्रंथों से हमारे पंचांगबनते हैं वे कम से कम 500 वर्ष पुराने हैं और इन 500 वर्षों में पश्चिम मेंगणित ज्योतिष में बहुत उन्नति हो गई है। इससे हमारे पंचांगों का गणितअर्बाचीन गणित ज्योतिष शास्त्र से करना चाहिए, जिससे वह प्रत्यक्ष आकाश केअनुसार यथार्थ उतरे। ऐसे गणित को "प्रत्यक्ष" या "इक्तुल्य" गणित या "दृग्गणित" कहते हैं। आज गुजरात और महाराष्ट्र में समस्त पंचांग प्रत्यक्षगणित से बनाए जाते हैं। पर भारत के अन्यान्य प्रदेशों में प्रत्यक्ष गणितसे बहुत कम पंचांग बनाए जाते हैं।

किंतु केवल प्रत्यक्ष गणित से हमारे पंचांगों का प्रश्न हल नहीं होसकता। हमारे पंचांग सूर्यचंद्र की आकाशीय स्थिति के अनुसार बनाए जाते हैंऔर इनमें अन्य ग्रहों की स्थिति भी दी रहती है। स्थिति बतलाने की रीति यहहै कि आकाश की एक निश्चित रेखा के ऊपर एक निश्चित बिंदु से ग्रहों के अंतरनापे जाते हैं ओर ये अंतर पंचांगों में दिए जाते हैं। उस निश्चित रेखा को "क्रांतिवृत्त", निश्चित बिंदु को "आरंभस्थान" और वहाँ से ग्रह के अंतर को "भोग" कहते हैं। पाश्चात्यों का आरंभस्थान निश्चित है और वह वसंतसंपात है।मगर हमारे पंचांग का आरंभस्थान कौन सा बिंदु हो, इस विषय में हमारे पंडितोंमें बहुत मतभेद है। वसंतसंपात और हमारे आरंभस्थान के बीच में जो अंतर है, उसकी

"अयनांश" कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अयनांश कितना है इस विषय मेंहमारे पंडितों में मतभेद है। अयनांश के निश्चय के बिना आरंभस्थान का निश्चयनहीं होता और आरंभस्थान के निश्चय के बिना पंचांग बन नहीं सकता। अत: **अयनांश** हमारे पंचांग की महत्वपूर्ण समस्या है।

सायन, निरयण - जिस पंचांग में वसंत संपात को आरंभ स्थान माना जाता है, उसको "सायन" पंचांग कहते हैं और जिस पंचांग में इस संपात के अतिरिक्त किसी और बिंदु को आरंभस्थान माना जाता है, उसको "निरयण" पंचांग कहते हैं। वसंतसंपात, दक्षिणायन, शरत्संपात और उत्तरायण, ये चार बिंदु क्रांतिवृत्त के ऊपर अनुक्रम से 90-90 अंश के अंतर से आए हैं। सूर्य स्थिर है, मगर पृथ्वी सूर्य के चारों और एक वर्ष में पूरा एक चक्कर लगाती है। परंतु हमें भ्रमवश ऐसा भासित होता है कि सूर्य ही हमारे चारों ओर घूम रहा है। सूर्य के इस भा समान वार्षिक मार्ग को "क्रांतिवृत्त" कहते हैं। इस मार्ग पर सूर्य एक वर्ष में पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ हमको दिखाई देता है।

दो संपात और दो अयन, ये चार बिंदु स्थिर नहीं, किंतु ये सब वार्षिक 50 विकला की बहुत छोटी गति से सतत पश्चिम की ओर वापस जा रहे हैं। ऋतुएँ, दिनऔर रात्रि का बढ़ना घटना, इन सब घटनाओं का आधार ये चार बिंदु हैं, अर्थात्जब सूर्य इन बिंदुओं के पास आता है, तब ये घटनाएँ होती हैं। इससे ऋतु, दिनमान, इत्यादि सायन वर्ष के अनुसार होते हैं। सायन वर्ष का मान 365 दिवस, 5 घंटे, 48 मिनट और 46 सेकंड है।

निरयण पंचांग का आरंभस्थान संपात के सिवाय कोई भी स्थिर या अस्थिर बिंदु हो सकता है। इससे जहाँ स्थिर आरंभस्थान विवक्षित हो, वहाँ असंदिग्धता केलिए "निरयण" के स्थान पर "नाक्षत्र" शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा है।तथापि "नाक्षत्र" के अर्थ में "निरयण" शब्द बहुत प्रयुक्त किया जाता है।तारे स्थिर हैं, इससे सूर्य किसी एक तारा, या स्थिर बिंदु से चलकर जितनेसमय के बाद फिर उस स्थिर बिंदु या तारा के पास पहुँचे उतने समय को "नाक्षत्र" वर्ष कहते हैं। नाक्षत्र वर्ष का मान 365 दिन, 6 घंटे, 9 मिनटऔर 10 सेकंड है। तारे दृश्य और स्थिर हैं, उनके संबंध में ग्रहों के आकाशीयस्थान नाक्षत्रपद्धति से हम बतला सकते हैं। यह नाक्षत्रपद्धति का विशेषउपयोग है। सायन वर्ष नाक्षत्र वर्ष से 20 मिनट और 24 सेकंड छोटा है।

हमारे पुराने ढंग के पंचांगों में, जो वर्षमान लिया जाता है, वह 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनट और 36 सेकंड है। यह न शुद्ध सायन है और न शुद्धनाक्षत्र। यह शुद्ध सायन वर्ष से लगभग 24 मिनट और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष सेलगभग मिनट बड़ा है। यह वर्षमान लेने के कारण हमारी ऋतुएँ और तारों के बीचमें ग्रहों के स्थान, ये सब हमारे प्रत्यक्ष अवलोकन और अनुभव से भिन्न आतेहैं।

ऐसी स्थिति में हमको क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहलेहमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि हमारे पंचांग में कौन कौन से विषय आतेहैं। पंचांग अर्थात् पाँच अंग ये हैं : तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण।

"तिथि" पूर्ण चंद्रबिंब का 15वाँ हिस्सा ओर "करण" 30वाँ हिस्सा बतलाताहै। "वार" एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय बतलाता है। "नक्षत्र"क्रांतिवृत्त का 27वाँ हिस्सा और "राशि" 30वाँ हिस्सा हैं। "योग" सूर्य औरचंद्र के भोगों का योग है। इसका कारण समझने के लिए खगोल की एक दो अन्यबातें जान लेना आवश्यक है।

आकाश का जो गुंबद जैसा गोलार्ध भाग हमें पृथ्वी पर ढक्कन सरीखा रखा हुआभासित होता है, उसको नीचे की ओर बढ़ाकर यदि पूर्ण गोल किया जाय, तो उसे हमखगोल कहेंगे। पृथ्वी के विषुवत्त के तल को यदि चारों ओर बढ़ाया जाय, तो वहखगोल को एक वृत्त में काटेगा। इस वृत्त को हम "आकाशीय विषुववृत्त" कहेंगे।आकाश में दिखाई देनेवाले किसी पिंड का आकाशीय विषुववृत्त से, उत्तर यादक्षिण, जो अंतर होता है, यह उस पिंड की क्रांति (declination) कही जातीहै। गणितशास्त्र का नियम है कि जब किसी दो पिंडों के भोगांशी (celestial longitudes) का योग या वियोग (अंतर) 0 या 180 अंश होता है, तब उन दो पिंडोंकी क्रांति समान होती है और इसको "क्रांतिसाम्य" कहते हैं। सूर्यचंद्र केक्रांतिसाम्य का समय निकालना, पंचांग के "याग" अंग का उद्देश्य है।

इतना समझने के बाद हम यह सोच सकते हैं कि हमारा पंचांग सायन अथवा किसअयनांश का निरयण (नाक्षत्र) होना चाहिए। खगोल संबंधी कुछ ही विषय ऐसे हैंजिनमें सायन और निरयण का कोई संबंध नहीं रहता, अत: उनमें कहीं कोई मतभेदनहीं है, उदाहरणार्थ वार। जो विषय दो ग्रहों के अंतर पर निर्भर हैं, उनमेंभी मतभेद नहीं है, क्योंकि ग्रहों के सायन और निरयण अंतर समान होते हैं।इसका कारण यह है कि भोगों का अंतर लेने में अयनांश वियोग क्रिया में उड़जाता है। ऐसे विषय है तिथि और करण। इन दोनों में सूर्य और चंद्र का अंतरलेना पड़ता है ग्रहण भी ऐसा ही विषय है। सूर्य के पास यदि कोई अन्य ग्रहआए, तो वह दिखाई नहीं देता और जब वह फिर सूर्य से दूर चला जाता है, तब पुन:दिखाई देने लगता है। इन घटनाओं को ग्रहों का "लोपदर्शन" अथवा "उदयास्त"कहते हैं। ये घटनाएँ सूर्य और ग्रह के बीच के अंतर पर निर्भर करती है, इससेइनमें भी सायन निरयण दोनों प्रकर के गणितों से एक ही उत्तर आता है।

सूर्य, चंद्र इत्यादि के दैनिक उदय और अस्त के साथ भी सायन या निरयणपद्धति का कोई संबंध नहीं। समस्त ग्रह, ताराओं के बीच, पश्चिम से पूर्व कीओर चलते हैं, मगर हमारे दृष्टिभ्रम के कारण कभी कभी वे हमको कुछ समय तकउलटी गति से, अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर, चलते दिखाई देते हैं। इनकीऐसी गति को "वक्री" गति कहते हैं। इस घटना के साथ भी सायन या निरयण पद्धतिका कोई संबंध नहीं।इस प्रकार पंचांग के कुछ विषयों का सायन और निरयण पद्धति से कोई संबंधनहीं है और कुछ विषय ऐसे हैं जिनके सायन और निरयण गणितों के परिणाम समानआते हैं। इन दोनों प्रकारों के विषयों में सायन और निरयण का मतभेद नहीं। अबऐसे विषय रहे जिनका सायन गणित और भिन्न भिन्न अयनांशों के निरयण गणित, येसब एक दूसरे से भिन्न आते हैं। ऐसे विषयों में हमको क्या करना चाहिए, अबइसपर विचार करना आवश्यक है।

उत्तरायण, दक्षिणायन और वसंतादि ऋतुओं का संबंध सायन गणना के साथ है। निरयण गणना के साथ इनकासंबंध नहीं है। इससे इन विषयों को सायन गणना के अनुसार ही निर्णीत करनाचाहिए। उदाहरणत:, उत्तरायण और शिशिर ऋतु का आरंभ 22 दिसंबर से ही माननाचाहिए, 14 जनवरी से नहीं। इससे उलटे विषय हैं अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्र औरमेष, वृषभ आदि राशियाँ। ये सब तारों के समुदाय हैं। ये तारे स्थिर हैं, इससे इनका गणित स्थिर आरंभस्थानवाली नाक्षत्र (निरयण) गणना से करना चाहिए, जिससे तारों के बीच में ग्रहों के स्थान यथार्थता से निर्दिष्ट हो सकें।

जब निरयण गणना की बात आती हैं, तब उसके स्थिर आरंभस्थान का अर्थात्अयनांश का प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है। संपात और अयन निसर्गसिद्धहैं, इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। निरयण गणना का स्थिर आरंभस्थान संपातके सदृश नैसर्गिक नहीं, मगर वह सांकेतिक प्रकार से बहुजनसम्मति से कोई भीलिया जा सकता है। यद्यपि इस विषय में हमारे पंडितों का ऐकमत्य नहीं हुआ, तथापि भारत शासननियुक्त "पंचांग संशोधन सीमिति" (कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी) नेजिस अयनांश की सिफारिश की है, उसे अब धीरे धीरे सभी पंचांगकार प्रयुक्त कररहे हैं। वह इस प्रकार से है : 1963 ई. के प्रारंभ (जनवरी, 1) का अयनांश 23 डिग्री 20 मिनट 24.29 सेकेण्ड और वार्षिक अयनगति, अर्थात् अयनांश कीवृद्धि = 50.27सेकेण्ड । इस वार्षिक गति से अयनांश भविष्य काल में सर्वदाबढ़ते रहते हैं। यदि भूतकाल का अनांश चाहें, तो इस गति से घटाकर लेनाचाहिए।

पंचांग के अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ क्रांतिवृत्त के समानविभाग हैं, मगर आकाश के अश्विनी आदि और मेषादि तारापुंज आकाश में समानविस्तारवाले नहीं है। ये समान अंतर पर भी स्थित नहीं हैं, अत: पंचांगस्थ औरआकाशस्थ नक्षत्रों और राशियों में पूर्ण सादृश्य रहना संभव नहीं है। तथापियथोचित स्थिर आरंभस्थान लेने से यह सादृश्य लगभग आ जाता है। संपात और अयनचल बिंदु हैं, अत: इनको आरंभस्थान मानने से पंचांग के और आकाश के नक्षत्रोंऔर राशियों का सादृश्य कुछ समय के बाद नहीं रह जाएगा, यह स्पष्ट है।

पंचांग के दैनिक (विष्कंभादि) योगों का उद्देश्य सूर्य चंद्र काक्रांतिसाम्य है, यह ऊपर बतलाया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहगणित सायन पद्धति से करना चाहिए, यह भी समझाया गया है। इसमें और भी एक बातहै। विष्कंभादि योगों में व्यतिपात 17वाँ योग है। इसे गणित सिद्धांत केअनुसार 14वाँ रखना चाहिए। इसका कारण, जैसा हमने ऊपर बतलाया है, यह है कियोग 0 (360) अंश अथवा 180 अंश होना चाहिए। सूर्य चंद्र के क्रांतिसाम्य को "महापात" कहते हैं, जो "व्यतिपात" और "वैधृत" नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमेंवैधृति 27वाँ योग है, जिसकी समाप्ति 360 डिग्री पर होती है। 180 डिग्री पर 13 योग होते हैं। इससे व्यतिपात 14वाँ योग होना चाहिए, मगर वह 17वाँ है।अतएव उपर्युक्त परिवर्तन आवश्यक है।

"पंचांग" में बतलाया गया है कि "वर्ष" नामक कालमान का हेतुवसंतादि ऋतु बतलाने का है, इससे वर्षमान सायन लेना चाहिए तथा इसके और भी कारणहै। हमारे बहुत से सामाजिक उत्सव और धार्मिक कृत्य ऋतुओं के ऊपर निर्भरहैं, जैसे शरत्पूर्णिमा, वसंतपंचमी, शीतलजलयुक्त घटदान, शरद्

के श्राद्ध कापायस भोजन, वसंत का निंबभक्षण, शरद् का नवान्नभक्षण इत्यादि। ये सब चांद्रमास के ऊपर निर्भर हैं, चांद्रमास अधिक मास पर निर्भर हैं, अधिक मास सौरसंक्रांति के ऊपर निर्भर हैं और सौर संक्रांति वर्षमान के ऊपर निर्भर है।यदि हमारा वर्षमान सायन न हो, तो हमारे सब उत्सव और व्रत गलत ऋतुओं में चलेजायेंगें। अंतिम 1.500 वर्षों में, अर्थात् आर्यभट से लेकर आज तक तक कीअवधि में हमारा, वर्षमान सायन रहने के कारण हमारे व्रतों और उत्सवों मेंलगभग 23 दिनों का अंतर पड़ गया है। इस अंतर को हम "अयनांश" कहते हैं। यदियही स्थिति भविष्य में भी बनी रही तो हमारी शरत्पूर्णिमा वसंत ऋतु में औरहमारी वसंतपंचमी शरद्ऋतु में आ जायगी। इस असंगति को दूर करने का एक ही उपायहै और वह है सायन वर्षमान का अनुसरण। यह अनुसरण हम दो प्रकार से कर सकतेहैं :

(1) "शुद्ध सायन" और (2) "विशिष्ट सायन" ।

1. शुद्ध सायन - यह सुविदित है। वह वसंतसंपात से आरंभ होकर फिरवसंतासंपात पर समाप्त होता है। इसमें अयनांश सर्वदा. (शून्य) रहता है।वर्तमान हिंदू पंचांग पद्धति के निर्माता आर्यभट के समय में, जो उत्सव जिनऋतुओं में पड़ा करते थे, वे उत्सव उन्हीं ऋतुओं में आज भी पड़ेंगे। मगर इसपद्धति के अधिक मास वर्तमान प्रणाली के अधिक मासों से भिन्न आएँगे। हमारेआज के ज्योतिषी वर्ग में "पंचांगवाद" का ज्ञान अल्प होने और भिन्न अधिक मासके कारण उत्सव भिन्न मासों में आने से (प्रचलित पद्धति के अनुसार) शुद्धसायन पंचांग का प्रचार नहीं होता। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पंचांगके अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ तो नाक्षत्र (निरयण) ही रहेंगी।ही रहेंगी। सायण संक्रांतियों का उपयोग अधिक मास और चांद्र मास नाम केनिर्णय के लिए होगा, जैसा आज भी अयनों और ऋतुओं के लिए उनका उपयोग होता है।

2. विशिष्ट सायन - शुद्ध सायन पंचांग का प्रचार आज कठिन है, इसलिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति ने विशिष्ट सायनमार्ग की संस्तुति की है। इस मार्ग में भी वर्षमान तो सायन ही रहेगा, मगरअयनांश 23 अंश स्थिर रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि हमारे उत्सवों में औरउनसे संबद्ध ऋतुओं में लगभग 23 दिनों का जो अंतर आज आता है, वह भविष्य मेंस्थिर रहेगा, और बढ़ेगा नहीं। दूसरा परिणाम यह होगा कि आज की प्रचलितपद्धति से जो अधिक मास आते है वे ही भविष्य में भी कुछ वर्षों तक आतेरहेंगे, परंतु आगे धीरे धीरे उनमें भिन्नता बढ़ती जायगी। आज की प्रचलितपद्धति और शुद्ध सायन पद्धति इन दोनों के बीच का मध्यम मार्ग है।

इस पद्धति के अश्विनी और मेष तथा आकाश के इन नामों के तारापुंजों मेंप्राय: वैसा ही सादृश्य रहेगा जैसा आजकल वर्तमान है। मगर कुछ समय के बादउनमें बहुत अंतर पड़ जायगा। वैसी अवस्था आने पर इसका उपाय भी सोचा जायगा, जिसमें हमारे आजकल के आरंभस्थान मेष और अश्विनी के बदले मीन और उत्तराभाद्रपदा इत्यादि को आरंभस्थान मानने की व्यवथा रहेगी। इस प्रकार कीयुक्तियों से, पंचांग सायन रहने पर भी, पंचांग के और आकाश के नक्षत्रों कासंबंध कालांतर में भी ठीक बना रहेगा। अधिकांश जनता का संबंध ऋतुओं के साथहै। तारादिकों का संबंध केवल पंडित

लोगों से है, जिनका अनुपात जनसाधारण मेंअत्यल्प है। वे विद्वान् हैं अत: तारों की यथार्थ गणना के लिए कोई अन्यव्यवस्था कर सकते हैं।

(1) भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति का "राष्ट्रीय पंचांग" इस विशिष्ट सायन मार्ग का एक उदाहरण है, यह ऊपर बतलाया गया है। यह मार्गचांद्र मासों की व्यवस्था के लिए है। "राष्ट्रीय पंचांग" की दिनगणना के लिएसौर मास और प्रत्येक मास की निश्चित दिनसंख्या रखी गई है (अंगरेजी मासोंकी तरह), जिससे तिथियों के वृद्धि क्षय और अधिक मास की गड़बड़ी नहीं रहती।यह व्यवस्था केवल व्यावहारिक दिनगणना के लिए है। धार्मिक व्रतों लिए चांद्रमास, अधिक मास, तिथि इत्यादि तो हैं ही। दिनगणना में वर्ष के दिन 365 औरप्रति चार वर्ष में एक वर्ष के 366 दिन होते है। इससे राष्ट्रीय दिनांकोंका मेल अँगरेजी तारीखों से हमेशा बना रहता है, जैसा नीचे की तालिका मेंबतलाया गया है।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन चलन के संबंध में काई चर्चा नहीं की है, परंतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। अपने ग्रंथ 'मध्यमाध्याय' के श्लोक 11- 12 में इन्होंने 'अयन बिंदु' को एक ग्रह मानकर इसके 'कल्पभगण' की संख्या 5,78,159 लिखी है जिससे अयन बिंदु कीवार्षिक गति 173 'विकला' होती है जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार मेंस्पष्ट अयनांश जानने के लिए जो रीति बताई गई है उससे प्रकट होता है कि इनकेअनुसार अयनांश 24 अंश से अधिक नहीं हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदाएक सी नहीं रहती। कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते 173 विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जबअयनगति के संबंध में हमारे सिद्धांतों को कोई निश्चय नहीं हुआ था।

मुंजाल के 'लघुमानस' में अयन चलन के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एककल्प में अयन भगण 1,99,669 होता है, जो वर्ष में 59.9 विकला होता है। मुंजाल का समय 854 शक या 932 ईस्वी है, इसलिए आर्यभट का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। इनका समय 800 शक के लगभग होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -

1. अयनांश क्या है।
2. अयनांश का साधन कैसे किया जाता है ।
3. अयनांश के भेद कितने है ।
4. ग्रहस्प्ष्टीकरण में अयनांश का क्या प्रयोजन है ।
5. वार्षिक अयनगति कितनी है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

अयनांश –अयन सम्बन्धित अंशादि मान

पलभा –द्वाद्वशांगुल छाया

लंकोदय –लंका का उदय मान

निरयण - अयनांश रहित मान

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2.7 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. अयनांश को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।
2. अयनांश के कितने प्रकार है। स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 3 लग्न साधन

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 लग्न परिचय

3.3.1 लग्नानयन

3.3.2 जन्मांग चक्र निर्माण विधि

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई **'लग्न साधन'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड एवं अयनांशादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ लग्नायन की चर्चा करते है और साथ ही जन्मांग चक्र निर्माण की विधि भी प्रस्तुत करते है।

लगतीति लग्नम् । गोलीय रीति से लग्न चार प्रकार के होते है। प्रथम लग्न , चतुर्थ लग्न, सप्तम लग्न एवं दशम लग्न। दो घण्टे का एक लग्न होता है। इस प्रकार 24 घण्टे में 12 लग्न होते है। पंचांग में प्रत्येक दिन के 12 लग्नों का समय दिया रहता है।

कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्न एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लग्न के आधार पर ही हम जातक का फलादेशादि कर्तव्य कर पाते है। इस इकाई में लग्नानयन की सैद्धान्तिक रीति का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त लग्नायन एवं जन्मांग चक्र निर्माण विधि** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- लग्न क्या है।
- लग्न का साधन कैसे होता है।
- लग्नों के प्रकार कितने है।
- जन्मांग चक्र क्या है।
- जन्मांग चक्र निर्माण किस प्रकार किया जाता है।

3.3 लग्न परिचय

सूर्योदय के समय सूर्य जिस राशि में हो वही राशि लग्न होगी, यह निश्चित है। लग्न शब्द से ही प्रतीत होता है कि एक वस्तु का दूसरे वस्तु में लगना। इसीलिए कहा गया है कि **- लगतीति लग्नम्** । वस्तुत: लग्न में यहीं होता है क्योंकि इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो स्थान उदयक्षितिज में जहॉ लगता है , वही राश्यादि (राशि, अंश, कला , विकला) लग्न होता है। यथा गोले –

भवृत्तं प्राक्कुजे यत्र लग्नं लग्नं तदुच्यते ।
पश्चात् कुजेऽस्त लग्नं स्यात् तुर्यं याम्योत्तरे त्वध:।।

उर्ध्वं याम्योत्तरे यत्र लग्नं तद्दशमाभिधम्।

राश्याद्य जातकादौ तद् गृह्यते व्ययनांशकम् ।।

अर्थात् क्रान्तिवृत्त उदयक्षितिज वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे लग्न कहते है। पश्चिम दिशा में जहॉ स्पर्श करता है,उसे सप्तम लग्न तथा अध: दिशा में चतुर्थ लग्न और उर्ध्व दिशा में दशम लग्न होता है। लग्न की यह परिभाषा सैद्धान्तिक गोलीय रीति से कहा गया है। पंचांग में भी दैनिक लग्न सारिणी दिया होता है । उसमें एक लग्न 2 घण्टे का होता है । इस प्रकार से 24 घण्टे में कुल 12 लग्न होता है। यह लग्न पंचांग में मुहूर्त्तों के लिये दिया गया होता है । किस लग्न में कौन सा कार्य शुभ होता है तथा कौन अशुभ, इसका विवेचन पंचागोक्त लग्न के अनुसार ही किया जाता है ।

3.3.1 लग्नानयन

लग्नानयन की सैद्धान्तिक रीति के लिये कहा गया है –

तत्काले सायनाऽर्कस्य भुक्तभोग्यांश संगुणात् ।

स्वोदयात्खाग्नि लब्धं यद् भुक्तं भोग्यं रवेस्त्यजेत् ।।

इष्टनाड़ी पलेभ्यश्च गतगम्यान्निजोदयान् ।

शेषं खत्र्या हतं भक्तमशुद्धेन लवादिकम् ।।

अशुद्धशुद्धभे हीन युक्तनुर्व्ययनांशकम् ।

अर्थात् तात्कालिक स्पष्टसूर्य में अयनांश जोड़ने से सायन सूर्य होता है। सायन सूर्य के भुक्त या भोग्यांशों को सायन सूर्य की राशि के स्वोदय मान से गुणा करें। तब गुणनफल में 30 का भाग देने से लब्धि भोग्य या भुक्त काल होती है । इस भोग्य भुक्त काल को इष्टकाल के पलों में से घटाकर जो शेष रहे उसमें से आगे की राशियों के भुक्त प्रकार प्रकार में पिछली राशियों के स्वोदय मान को घटाते जाएँ। जब न घटे तो शेष को 30 से गुणाकर अशुद्ध राशिमान से भाग देने से लब्धि अंश कलादि होती है। उस अंश कला के पहले अशुद्ध राशि में से एक घटाकर रखने से **'सायन लग्न'** व उसमें से अयनांश घटाने पर '**निरयण लग्न**' होता है। उदाहरणार्थ -

लग्नानयनम् -

माना कि **सूर्यस्पष्ट** – 4।27^0।50।0 राश्यादि है , **अयनांश** - 23^0।45।35 है, पूर्व अध्याय के अनुसार पलभा एवं चरखण्ड का ग्रहण कर लेते है, इष्टकाल 8।20 घटयादि है तो लग्नानयन श्लोकानुसार इस प्रकार से होगा –

स्पष्ट सूर्य - 4।27^0।50।0

अयनांश - + 23^0।45।35

5 । 21^0। 35 ।35 - **सायन सूर्य**

30^0। 00 ।00

- 21^0 । 35 ।35 घटाने पर

8^0 । 24 । 25 भोग्यांश

लग्न साधन भुक्त या भोग्य प्रकार से किया जा सकता है, यहॉ भोग्य रीति से किया जा रहा है।
सायन सूर्य कन्या राशि का है अत: कन्या राशि के उदय मान 345 से भोग्यांश को गुणा किया। गुणनफल 2898।11।25 आया। इसमे 30 का भाग देने पर 96।36।22 पलात्मक मान आया जो भोग्यकाल है।
हमारा इष्टकाल 8।20 घटयादि है तथा उसका पलात्मक मान 8 × 60 + 20 = 500 पल हुआ।
अब इष्ट पलों में से भोग्य को घटाया –

500।00।00
- 96।36।22
403 ।23।38 पल मिले।

इन पलों में से जहॉ तक का पलात्मक मान घट सके, घटाने पर –

403।23।38
- 345।00।00 तुला राशि का मान - तुला शुद्धराशि
58।23।38

अशुद्ध राशि वृश्चिक हुई, (नहीं घटने के कारण) ।
शेष पलों को 30 से गुणा किया –
58।23।38
× 30
1740। 690।1140
इसमें अशुद्ध राशि वृश्चिक के उदय मान 352 से भाग दिया , भाग देने पर 4 अंश 56 कला 36 विकला आया, अत: 7।4^0।56।36 सायन लग्न है।
इनमें से पूर्व युक्त अयनांश घटाने से निरयण लग्न होगा अत: -

7।4^0।56।36
- 23^0।45।35 - अयनांश
6।11^0।11।01 निरयण लग्न स्पष्ट।

इसी लग्न स्पष्ट के आधार पर हम जन्मांग चक्र का भी निर्माण करते है। जन्मांग चक्र में जातक का जिस समय में जन्म हुआ होता है, उस समय को हम पंचांग में दैनिक लग्न सारिणी में देख लेते है। पश्चात् उस लग्न को जन्मांग चक्र में लिखकर तात्कालिक प्रश्न कुण्डली का निर्माण कर लेते है। किन्तु जन्मांग चक्र में गणितीय रीति से लग्नस्पष्ट का साधन कर जन्मांग चक्र में लग्न को लिखते है।

3.3.2 जन्मांग चक्र निर्माण विधि –

लग्न के बाद स्पष्ट ग्रहों को जन्मांग चक्र में भावानुसार लिखते है। अत: जन्मकुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्नस्पष्ट के साथ ग्रहस्पष्ट को भी जानना होता है – यथा
हमारा लग्न स्पष्ट आया है 6।11।22।01 इस आधार पर जन्मांग चक्र होगा –

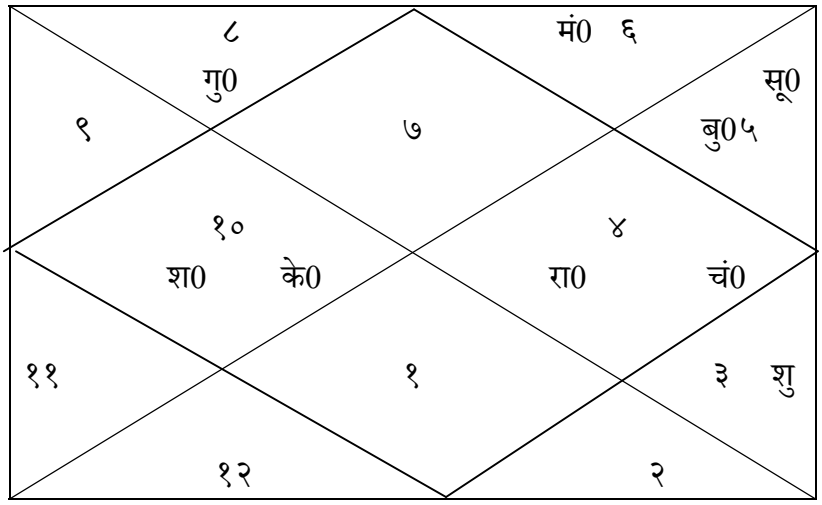

चक्र से स्प्ष्ट है कि तुला लग्न की कुण्डली है। यहॉ यदि सूर्यादि स्पष्ट ग्रहों को कल्पना कर निम्न प्रकार मानते है तो जन्मांग चक्र में ग्रहों को इस प्रकार से स्थापित करेंगे –

स्पष्ट सूर्य – 4।27^0।50।0
स्पष्ट चन्द्र – 3।20^0।25।30
स्पष्ट मंगल – 5।25^0।8।35
स्पष्ट बुध – 4।25^0।23।33
स्पष्ट गुरू – 7।56^0।23।24
स्पष्ट शुक्र – 2।24^0।26।45
स्पष्ट शनि – 9।10^0।12।34
स्पष्ट राहु – 3।25^0।56।55
स्पष्ट केतु - 9 ।23^0।22।11

जिस दिन सूर्य अपनी राशि का संक्रमण करते है अर्थात् सूर्य संक्रान्ति के दिन प्रात: काल सूर्योदय का समय व सूर्य की अधिष्ठिति राशि के लग्न का प्रारम्भ प्राय: एक ही होता है अर्थात् मेष राशि में सूर्य 14 अप्रैल को जाता है। अत: जिस समय सूर्योदय होगा, उसी समय मेष लग्न का प्रारम्भ होगा। तत्पश्चात् वृष, मिथुन, कर्क ,सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु , मकर , कुम्भ एवं मीन आदि द्वादश लग्न होते है।

इस प्रकार से हम लग्नायन को जानकर जन्मांग चक्र का भी निर्माण कर लेते है, और जन्मांग चक्र को स्पष्ट ग्रहों के आधार पर कुण्डली का निर्माण कर लेते है। जन्मांग चक्र में स्थित ग्रहों के अनुसार निम्न प्रकार से फलादेश आदि कर्तव्य करते है -

जन्मांग चक्र के द्वादश भाव में द्वादश राशि स्थित कर जन्मांग चक्र का निर्माण किया जाता है, यह स्पष्ट हो चुका है। प्रथम भाव में जो राशि लिखी जाती है,उसे लग्न कहते है। प्रत्येक लग्न के फल भिन्न – भिन्न हैं और वह नीचे लिखे अनुसार हैं।

जैसे: -

मेष लग्न - इस लग्न में जन्म लिया हुआ जातक प्रचण्ड अभिमानी, गुणवान, क्रोधी , मित्र विरोधी, दुष्टसंगति वाला, अपने पराक्रम से यश प्राप्त करने वाला व अत्यन्त रोषयुक्त होता है।

वृष लग्न - वृष लग्न वाला जातक बहुत गुणवान, धन से पूर्ण, रणधीर, शूर वीर, शान्त चित्त , प्रियवचन बोलने वाला गुरूजनों का भक्त होता है।

मिथुन लग्न - मिथुन लग्न वाला जातक भोगी, श्रेष्ठ अनेक पुत्र व मित्रवाला,गुप्त बात को गुप्त रखने वाला,धनवान, सुशील और राजा के समान उसकी स्थिति होती है।

कर्क लग्न - कर्क लग्न वाला जातक साधुजनों का भक्त , नम्र स्वभाव, निरन्तर उदार चित्त, दानशील, जलविहार करने वाला , कामी व मिष्ठान्न भोजन करने वाला होता है।

सिंह लग्न - सिंह लग्न वाला जातक दुर्बल शरीर, महापराक्रमी, भोगी, अल्प पुत्रोंवाला,अल्प भोजन करने वाला, बुद्धिमान व अभिमानी होता है।

कन्या लग्न - कन्या लग्न वाला जातक उत्तम ज्ञानी, गुणी, बल व भलाई से युक्त, सदैव प्रसन्नचित्त, नित्य लक्ष्मी प्राप्त करने वाला होता है।

तुला लग्न - तुला लग्न वाला जातक अधिक गुणी, धनलाभयुक्त, व्यापार कार्य में अति निपुण, उसके गृह में लक्ष्मी नित्य वास करती हैं और वह अपने कुल का श्रेष्ठ व भूषण होता है।

वृश्चिक लग्न - वृश्चिक लग्न वाला जातक अनेक विद्या में निपुण, सदा कलहप्रिय, शूर वीर वृत्ति का होता है।

धनु लग्न – धनु लग्न वाला जातक सत्यवादी , राजा का सेवक, बुद्धिमान, दूसरों के मन की बात जानने में निपुण, ज्ञानवान, धनुर्विद्या में निपुण व कलाकुशल होता है।

मकर लग्न - मकर लग्न वाला जातक कठोर मनवाला, जो मन में आये वह काम करनेवाला, सठ, अनेक सन्तानों वाला, अति चतुर होते हुये बहुत लोभी होता है।

कुम्भ लग्न - चंचल स्वभाव वाला, अतिकामी, लोगों से मित्रता रखनेवाला, दम्भी और धान्य से युक्त होता है।

मीन लग्न - मीन लग्न वाला जातक बहुत चतुर, अल्पकामी, उत्तम रत्न आभूषण धारण करनेवाला, चंचल, धूर्त, शिल्पशास्त्र में निपुण होता है।

यह लग्न फल शुभ ग्रहों की युति – योगादि पर अवलम्बित है अन्यथा यदि लग्न भाव पर पापग्रहों की युति व दृष्टि हो अथवा लग्न निर्बल हो तो यह फल कम प्रमाण पर मिलेगा। यह पाठक को ध्यान रखना होगा।

सूक्ष्म लग्न साधन रीति –

लग्न सिद्ध करने के लिये सूर्य के उदय समय का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, यह स्पष्ट है कि किन्तु पूर्व से पश्चिम के शहरों में भिन्न - भिन्न समय पर सूर्योदय होना सम्भव है। ऐसे स्थिति में सूर्योदय का समय शुद्ध निश्चित ज्ञान के अतिरिक्त, शुद्ध जन्म लग्न का मिलना भी अशक्य है।

बोध प्रश्न

1. भवृत्त से तात्पर्य है -
   क.क्षितिज वृत्त ख. क्रान्ति वृत्त ग. पूर्वापर वृत्त घ. दृगवृत्त
2. लग्न कितने प्रकार के होते है –
   क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5
3. सायनाऽर्क का अर्थ है –
   क. निरयन सूर्य ख. अयन सहित सूर्य ग. सायन घ. अयन सूर्य
4. संक्रान्ति कहते है –
   क. सूर्य का परिवर्तन
   ख. सूर्य का एक राशि से दूसरे राशि में परिवर्तन
   ग. परिवर्तन
   घ. कोई नहीं
5. जन्मांग चक्र में भावों की संख्या कितनी है।
   क. 10 ख. 11 ग. 12 घ. 13

मेष - 278 पल	कर्क – 323 पल	तुला – 278 पल	मकर – 323 पल
वृष – 299 पल	सिंह - 299 पल	वृश्चिक – 299 पल	कुम्भ – 299 पल
मिथुन – 323 पल	कन्या – 278 पल	धनु – 323 पल	मीन – 278 पल

जिस स्थान पर सूर्योदय निश्चित करना हो उस शहर के पलभा पर से चरखण्ड जानकर उपर दिये हुये तीन राशि में से घटाओ और कर्क से कन्या राशि के के पलों में जोड़ो, जिससे किसी भी शहर के सूर्योदय का पलात्मक उदय का ज्ञान होगा व तुला से धन राशि के पलों में जोड़ने और मकर से मीन राशि के पलों में घटाने से द्वादश राशि का पलात्मक रवि उदय समय ज्ञात किया जा सकता है।

पलभा आनयन की विधि पूर्व के अध्यायों में की जा चुकी है। अत: उसी आधार पर जिस शहर की पलभा का आनयन करना हो, करके उसी आधार पर उस शहर का अभीष्ट समय का ज्ञान किया जा सकता है। इसी आधार पर उस शहर में जन्मे किसी जातक का अभीष्ट लग्न का आनयन करना चाहिये।

लग्न में रवि से शनि तक सप्त ग्रह में जो ग्रहस्थिति हो उसका फल निम्न अनुसार करना चाहिये –

1. **लग्न में सूर्य का फल** - मध्यम ऊँचा शरीर, लाल गौर वर्ण, तामसी, धाड़सी, उत्साही, पित्तप्रकृति, कम बोलने वाला।
2. **लग्न में चन्द्रमा का फल** – रूपवान, गोरा वर्ण, सुन्दर शरीर, मितभाषी, तेज ऑखें , चंचल स्वभाव, दुबला – पतला शरीर, कफ वात पित्त प्रकृति, स्त्रियों को प्रिय।

3. **लग्न में मंगल का फल** - कृश शरीर, लाल वर्ण नेत्र, चेहरे पर माता के दाग,धैर्यवान, उदार , चंचल स्वभाव, क्रूरदृष्टि , उग्र स्वभाव, तामसी, क्रोधी।
4. **लग्न में बुध का फल** – प्रसन्नमुख, विनोदी भाषण,मजबूत शरीर व बुद्धिमान,बोलने में प्रवीण, पिंगल नेत्र,कफ – वात –पित्त प्रकृति।
5. **लग्न में गुरू का फल** – गोरा , स्थूल देही, लम्बी नाक , ऊँचा मस्तक, गोल नेत्र , सदाचारी,विद्वान,स्थिर चित्त, गम्भीर स्वभाव, ग्रन्थपठन प्रेमी।
6. **लग्न में शुक्र का फल** – गोरा , कोमल सुन्दर शरीर,तेजस्वी कान्ति,पानीदार ऑखें, घुघरवाले बाल, ऐंठबाज, पोशाक का शौकीन, व्यवस्थितकारभारप्रिय, स्त्रीप्रिय व सुगन्धित पदार्थों का शौकीन ।
7. **लग्न में शनि का फल** - कृश शरीर, काला रंग, पीले नेत्र,मन्दबुद्धि, बलहीन, कृपण,आलसी, मितभाषी परन्तु क्रोधी, कड़े बाल, उत्साही व वात प्रकृति।

जन्मांग चक्र का सम्बन्ध जन्मकुण्डली से है। आइये अब हम जन्मकुण्डली को भी समझते है – मुख्यत: कुण्डली चार प्रकार की होती है –

1. जन्म समय की लग्न कुण्डली
2. जन्म राशि कुण्डली
3. वर्तमान वर्ष कुण्डली
4. प्रश्न कुण्डली

जन्म कुण्डली के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने केलिये सूक्ष्म कुण्डलियॉ भी हैं। जैसे – होरा, द्रेष्काण, तृतीयांश, सप्तमांश, नवमांश और भाव – चलित जिसके आधार पर अत्यन्त सूक्ष्म विचार किया जाता है , परन्तु यह कई विद्वानों का अनुभव है कि इन सब कुण्डलियों में जन्मकुण्डली सबसे मुख्य व प्रभावशाली है और उसे गणित द्वारा सिद्ध कर फलितादि कहने से अधिकांश सन्तोष मिल सकता है।

मनुष्य के जन्म समय आकाशस्थ ग्रहों के गति व स्थिति आदि दर्शानें वाली कुण्डली को जन्म कुण्डली कहते हैं ।

मनुष्य के जन्म समय चन्द्र जिस राशि में स्थित हो उसे लग्न स्थान में लिखकर क्रम से दूसरीराशि व दूसरे ग्रह जिस कुण्डली में लिखे जाते हैं या रहते हैं उसे चन्द्र या राशि कुण्डली कहते हैं।

जन्म वर्ष आरमभ होने के दिन व समय पर एक वर्ष के लिये ग्रहों की स्थिति दर्शाने वाली कुण्डली को वर्षकुण्डली कहते हैं।

किसी भी समय किसी प्रश्न का उत्तर उक्त समय के ग्रहों के स्थिति व गति के अनुसार दर्शाने वाली कुण्डली को प्रश्न कुण्डली कहते है।

जन्म कुण्डली (लग्न) से मनुष्य के रूप , रंग आदि द्वादश भावों के गुणों का सुख – दु:ख मिलना ज्ञात होता है किन्तु राशि कुण्डली से मन की स्थिति, सन्तुष्ट या असन्तुष्ट , हर्ष या विषाद का होना

ज्ञात होता है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जान लिया कि सूर्योदय के समय सूर्य जिस राशि में हो वही राशि लग्न होगी, यह निश्चित है। लग्न शब्द से ही प्रतीत होता है कि एक वस्तु का दूसरे वस्तु में लगना । इसीलिए कहा गया है कि **- लगतीति लग्नम्**। वस्तुत: लग्न में यहीं होता है क्योंकि इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो स्थान उदयक्षितिज में जहॉ लगता है , वही राश्यादि (राशि, अंश, कला , विकला) लग्न होता है। जन्मकुण्डली के समस्त फलादेश लग्नाश्रित होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

इष्टकाल – अभीष्ट काल। जन्म समय से सूर्योदय पर्यन्त का काल

लगति – लगता है।

क्षितिज वृत्त – खमध्य से 90 अंश से बना वृत्त

अस्त लग्न - सप्तम लग्न

तुर्य – चतुर्थ

उर्ध्व – उपर

अध: - नीचे

होरा – समय

लग्नायन – लग्न का साधन

खाग्नि – 30

अशुद्ध – जो शुद्ध न हो

निरयण- अयन रहित

सायन – अयन सहित

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ग

3. ख

4. ख

5. ग

3.8 सहायक ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त - चौखम्भा प्रकाशन

सुलभ ज्योतिष ज्ञान - चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र

ज्योतिष रहस्य – चौखम्भा प्रकाशन

जन्म पत्र व्यवस्था – चौखम्भा प्रकाशन

भारतीय कुण्डली विज्ञान – चौखम्भा प्रकाशन

केशवीय जातक पद्धति – चौखम्भा प्रकाशन

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लग्न से क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये
2. लग्नायन कीजिये।
3. द्वादश लग्न का फल लिखिये।
4. कल्पित जन्मांग चक्र निर्माण कीजिये।
5. लग्न के महत्व को समझाते हुये उसे स्पष्ट कीजिये।